चन्दामामा
जून १९८३
2 Rs

इन्द्र धनुषी रंगो में सबका मनमोहने वाले डायमंड कामिक्स

नन्हे मुन्नों के प्यारे साथी

बच्चों की निराली अनूठी मनभावन पत्रिका अंकुर का नया अंक

अंकुर और खजाने का चक्कर 3-00

डायमंड कामिक्स की गौरवशाली परम्परा में एक नई सीरीज युद्ध चित्र कथा की नई कड़ी

वतन की कसम 3-50

महान् कार्टूनिस्ट **प्राण** का पराग से लोकप्रियता प्राप्त चरित्र बिल्लू का नया अंक

बिल्लू का हंगामा 3-50

ताऊ जी और शकराल की राजकुमारी 3-50

राजन इकबाल और खतरनाक मुजरिम 3-50

अंकुर बाल बुक क्लब

'अंकुर बाल बुक क्लब' के मेम्बर बनें व स्टिकर मुफ्त प्राप्त करें।

क्रिकेट की दुनिया में तहलका मचा देने वाले क्रिकेट सम्राट

सुनील गावस्कर

(सचित्र जीवनी)

क्रिकेट के अपटुडेट आँकड़ों के साथ उनकी सचित्र जीवनी 4/-

युवा हृदय सम्राट

कपिल देव

कपिलदेव का रंगीन ब्लोअप फ्री 4/-

नये बाल उपन्यास

लेखक राजीव

चाचा भतीजा और मनहूस खजाना	2.00
फौलादी सिंह और उपग्रह-ए-वन	2.00
फौलादी सिंह और रेड बॉस की टक्कर	2.00
महाबली शाका और खूनी जनरल	2.00

आज ही अपने निकट के बुक स्टाल से खरीदें।

डायमंड कामिक्स प्रा. लि. 2715 दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

राज्यों के शासकों और जन साधारण के सामने भी कोई न कोई समस्या उत्पन्न होती रहती है। ऐसे संदर्भों में उस समस्या को भलीभांति समझ कर उसे हल करने का उपाय निकालना होता है। पर बिना सोचे-विचारे लिये गये निर्णय समस्या को किस प्रकार आफत में डाल देते है, इसका बोध हमें "सामंत राजा" नाम की कहानी से होता है।

अमर वाणी

अल्पोऽधिकार लाभात्, स्वामिनो ऽप्यतिरिच्यते ।
वालुकोष्णत्व मत्युग्रम्, विवस्व तापनादपि ।।

[क्षुद्र व्यक्ति को अधिकार देने पर वह अपने मालिक से कहीं अधिक अधिकार चलाने की सोचता है, जैसे सूर्य की उष्णता से कहीं ज्यादा उसकी उष्णता से तप्त बालू की भी होती है न]

वर्ष : ३५ जून १९८३ अंक : १०

एक प्रति : २-०० :: वार्षिक चन्दा : २४-००

कंजूस पिशाच

पीतांबर कंजूसी के लिए मशहूर है। उसकी कंजूसी के बारे में गाँव के लोग कई प्रकार की कहानियाँ सुनाते हैं।

पीतांबर की पत्नी कामाक्षी, ससुराल आ गई। कुछ ही दिनों में उसकी जिह्वा का स्वाद जाता रहा। उसको दोनों जून अचार के साथ भोजन करना पड़ता था। पानी मिला हुआ छाछ पीना पड़ता था। लेकिन वह स्वभाव से बड़ी सरल थी, इस कारण वह जैसे तैसे सह लेती थी।

पीतांबर अपनी दूकान केलिए आवश्यक माल खरीदने के लिए अकसर शहर में जाया करता था। एक बार वह शहर जाकर दूसरे दिन सवेरे लौट आया। कामाक्षी ने जाकर दर्वाजा खोला। उस वक़्त उसकी नाक का बेसर दमक उठा।

पीतांबर पल भर के लिए चकित रह गया, पर दूसरे ही क्षण क्रोध में आकर पूछा—
"अरी चुड़ैल, तुमने यह नक बेसर कब खरीदा? लगता है कि तुम मेरे घर को बरबाद करके रहोगी।"

"उफ! जोर से मत चिल्लाइये। अन्दर आने पर मैं सारी बातें बता दूंगी।" धीमी आवाज में कामाक्षी ने कहा।

पीतांबर बड़बड़ाता हुआ घर के अन्दर आया। कामाक्षी अपने पति से बोली—"मुझे दूध का पेड़ा सब से ज्यादा प्यारा है लेकिन शादी के बाद इधर पांच साल से एक बार भी पेड़ा खाने का मुझे मौक़ा नहीं मिला। इस कारण तुम्हारे शहर में जाते ही मैंने दूध, चीनी आदि चीजें मंगवा लीं।

"मैंने सोचा कि पेड़े तैयार करने की खबर पड़ोस वालों को भी न मिले, इस ख्याल से मैंने रात को सब के सोने के बाद दूध गरम करके पेड़ा बनाना शुरू किया। इस बीच एक पिशाचिनी यह कहते मेरे

यमुना दत्त

सामने प्रत्यक्ष हो गई–"मैं अचार की गंध से तंग आ गई थी, आज स्वादिष्ट मिठाई बन रही है। मुझे भी थोड़ी सी मिठाई खिला दो न?"

पिशाचिनी को देखते ही मैं डर गई। पिशाचिनी मुझे धीरज बंधाते हुए बोली–"कामाक्षी, डरो मत। मैं कोई पराई नहीं हूँ। तुम्हारे पिछवाड़े के इमली के पेड़ पर बसने वाली पिशाचिनी हूँ।"

ये बातें सुनकर मैंने एक थाली में कुछ पेड़े ले जाकर पिशाचिनी के हाथ दे दिये।

पिशाचिनी प्रसन्नता के मारे पेड़े खाते गुनगुना उठी और बोली–"तुम जब तब मिठाइयाँ बना कर मुझे बुलाया करो। यह काम तुम उन्हीं दिनों किया करो, जिन दिनों तुम्हारे पति घर पर नहीं होते। मैं मर्दों से बहुत डरती हूँ। मैं तुम्हारा ऋण जरूर चुकाऊँगी।" यों कहकर पिशाचिनी गायब हो गई।

पिशाचिनी के चले जाने के बाद मैं थाली उठाने गई, तो देखती क्या हूँ कि थाली में यह नक बेसर चमक रहा है।"

कामाक्षी अपने पति को सारा क़िस्सा सुना कर बोली–"देखते हो न, हमारे खर्च से सौ गुने फ़ायदा हुआ है।"

फ़ायदे की बात सुनते ही पीतांबर की आँखें दमक उठीं। उसने अपनी पत्नी को डांटा–"आज तक तुमने ये मिठाइयाँ क्यों नहीं बनाईं? आज से ही सही तुम बराबर मिठाइयाँ बना कर पिशाचिनी को निमंत्रण दिया करो। लेकिन अच्छी तरह से यह बात गांठ बांध लो कि तुम जो भी मिठाई बनाओगी; वह सिर्फ़ पिशाचिनी के लिए ही होगी।" इस प्रकार कामाक्षी को उसने चेतावनी दी।
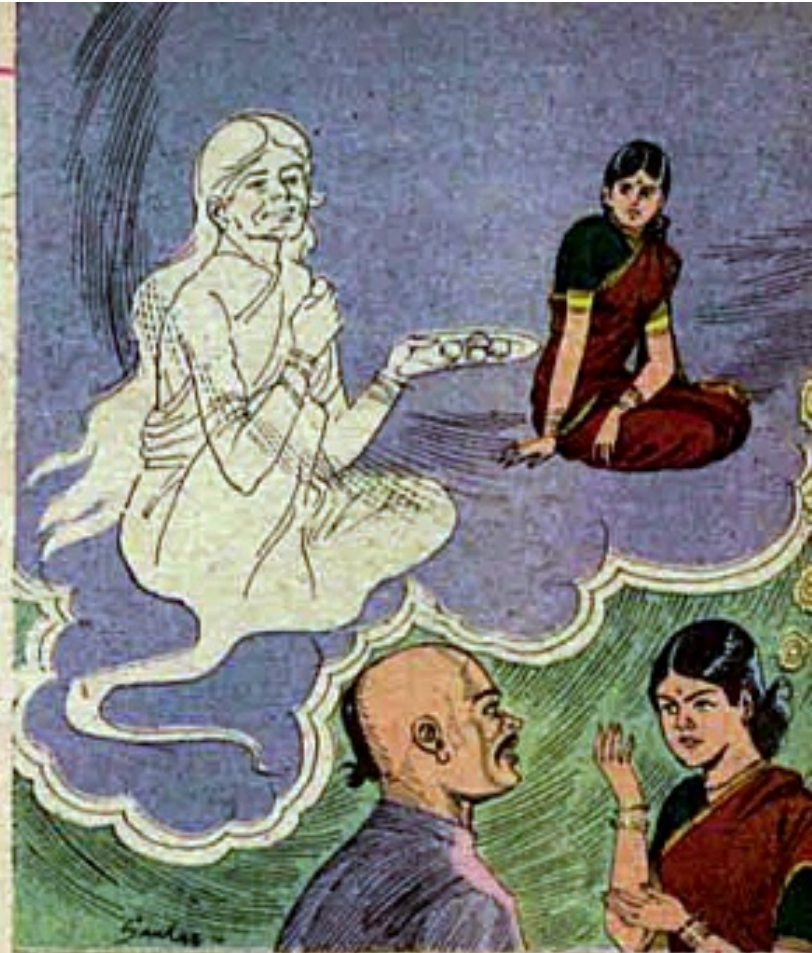
उस दिन से पीतांबर जरूरी काम के न होने पर भी पिशाचिनी के वास्ते रात के समय इधर-उधर घूम-घाम कर लौट आता था।

कामाक्षी ने धीरे-धीरे कानों के लिए कुंडल, हाथों के लिए चूड़ियाँ और उंगलियों

के लिए चार पाँच अंगूठियाँ कमा लीं। पर पीतांबर उनसे संतुष्ट न हुआ। उसके मन में पिशाचिनी की मदद से भारी रक़म कमाने की इच्छा थी। इसी लोभ में पड़ कर वह प्रति दिन संध्या के समय इमली के पेड़ के नीचे खड़े होकर हाथ जोड़ कर यों कहने लगा–"हे पिशाचिनी, तुम्हारा दिल कैसा उदार है! तुम मेरी पत्नी को अपनी बेटी से बढ़ कर प्यार करती हो। मुझे भी एक बार दर्शन दो।"

बहुत मिन्नत करने पर भी पिशाचिनी पीतांबर को दिखाई नहीं दी। इसपर उसके मन में यह हठ बढ़ता गया कि किसी भी उपाय से सही पिशाचिनी से मिल कर ज्यादा धन कमा लेना चाहिए। एक दिन पीतांबर अपनी पत्नी से झूठ बोला कि मैं शहर जा रहा हूँ।

"अच्छी बात है, पिशाचिनी को बादाम की खीर बहुत पसंद है। आज रात को वही खीर बनाऊँगी।" कामाक्षी ने कहा।

कामाक्षी के रसोई घर में जाते ही पीतांबर झट से अटारी पर जा बैठा। थोड़ी ही देर में इलायची की सुगंध से भरी खीर बन कर तैयार हो गई। तब तक चारों तरफ़ खूब अंधेरा फैल गया था।

कामाक्षी खीर के थाल को बीच वाले कमरे में रख कर सपासप खाने लगी। अटारी पर बैठा पीतांबर सोचने लगा कि कामाक्षी पिशाचिनी केलिए थोड़ा-बहुत खीर बचायेगी। लेकिन उसने सारी खीर पी डाली।

इसे देख पीतांबर क्रोध में आ गया, अटारी से नीचे कूद कर चिल्ला उठा–"अरी, तुम इतने रुपये खर्च करके अकेली खीर पी जाती हो? अगर तुम्हें पेट भरना ही था तो प्याज-मिर्च के साथ सूखी रोटी खा सकती थी न? अब पिशाचिनी आ जाएगी, तो तुम उसको क्या खिलाओगी?"

कामाक्षी का चेहरा पीला पड़ गया, अपनी आँखों में आँसू भर कर बोली–"अजी, न कोई पिशाचिनी है और न भूत-

प्रेत। मैं रोज अचार, प्याज-मिर्च के साथ रोटी खा नहीं पाती थी, इसलिए मैं ने यह नाटक रचा है। हमारे घर इतनी सारी संपत्ति है कि दस-बीस आदमी रोज बढ़िया भोजन करे, तब भी इस में कोई कमी न होगी।"

पीतांबर अपनी पत्नी की बातों पर यक़ीन न कर पाया, उसने पूछा—"तो फिर तुमको ये सारे आभूषण कैसे प्राप्त हुए ?"

"ये सब सोने का मुलम्मा चढ़े गहने हैं।" कामाक्षी ने सच्ची बात बता दी।

पीतांबर आँखें लाल-पीली करके दांत पीसते हुए लाठी लेने को दौड़ा, उसी वक़्त यह कहते हुए एक पिशाचिनी उसके सामने आ खड़ी हुई—"रुक जाओ। जो काम आवेश में आकर किया जाता है उसका फल बड़ा बुरा होता है और बाद को पछताना पड़ता है।"

पिशाचिनी को देखते ही पीतांबर के साथ कामाक्षी भी थर-थर कांप उठी। पिशाचिनी ने उनको हिम्मत बंधाते हुए कहा—"पीतांबर, सुनो, तुम्हारी पत्नी ने जो नाटक रचा, उस में थोड़ी बहुत सचाई है। मैं तुम्हारे पिछवाड़े के इमली के पेड़ पर निवास करती हूँ।"

ये बातें सुनकर पीतांबर को थोड़ी हिम्मत बंधी। वह बोला—"ओह, किराये से बचने केलिए तुम हमारे इमली के पेड़ पर निवास करती हो ? हम पति-पत्नी के झगड़े में तुम क्यों दखल देती हो ? यहाँ से चली जाओ।"

"मैं अवश्य यहाँ से चली जाऊँगी। लेकिन जाने के पहले कामाक्षी के प्रति मेरे दिल में जो सहानुभूति है, दो-चार शब्दों में प्रकट करना चाहती हूँ। मैं अपने जीवन काल में तुम से कहीं अधिक कंजूस थी। अपने पति की सारी कमाई छिपा कर सारे परिवार को मैं सूखी रोटी और नमक-मिर्च खिलाया करती थी। मैं ने इस तरह जो कुछ धन जोड़ कर रखा, एक दिन चोर लूट ले गये। इसी चिंता में मर कर मैं पिशाचिनी बन गई। मुझे दर असल इस बात का बड़ा दुख है कि मेरे मरने पर रोनेवाला एक भी व्यक्ति मुझे दिखाई नहीं दिया। कंजूसी एक पिशाचिनी जैसी होती है। उससे पिंड छुड़ाना मनुष्य के लिए असंभव हो, ऐसी बात नहीं है। मनुष्य के लिए यह जरूरी अवश्य है कि वह किफ़ायत करे, मगर वह कंजूसी करे, यह अच्छा नहीं है। इस बात का हमें ध्यान रखना चाहिए।" पिशाचिनी ने समझाया।

पिशाचिनी की बातें सुनकर पीतांबर ने यह अनुभव किया कि वह भी एक पिशाच बन गया है। वह अपने दोनों हाथ जोड़ कर बोला–"मैं तुम्हारे इस उपकार को ज़िंदगी भर भूल नहीं सकता। तुमने मुझे इस नियति से बचाया कि भविष्य में मैं एक कंजूस पिशाच बन कर इस इमली के पेड़ का निवासी बनूँ।"

"मैंने अपनी ज़िंदगी में एक तो अच्छा काम किया, आखिर इस बात की मुझे बड़ी खुशी है।" यों कहकर पिशाचिनी खिड़की की राह से हंसते हुए पिछवाड़े की ओर चली गई।

इसके बाद पीतांबर अपनी पत्नी से बोला–"कामाक्षी, मैंने आज तक तुमको बहुत सताया है। उस पुराने पीतांबर को तुम भूल जाओ। हम यह सोच लें कि आज ही हमारी शादी हुई है।"

अपने पति के मुँह से ये बातें सुनकर कामाक्षी फूली न समाई और झट झुक कर उसने अपने पति के चरणों की धूलि को आँखों से लगा लिया।
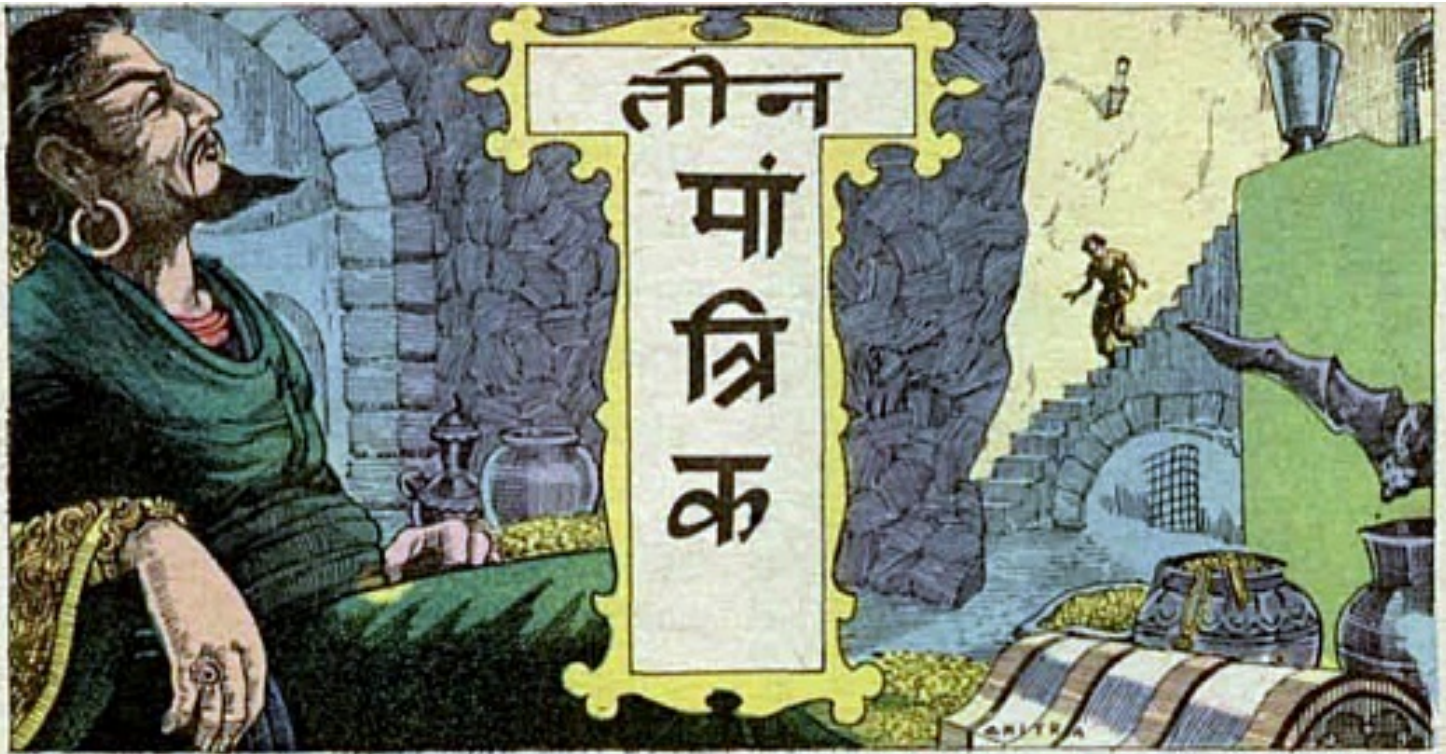
प्राचीन काल में अवंतीनगर में एक बूढ़ा व्यापारी रहा करता था। उसने अपनी जवानी में देश-विदेशों के साथ नौका व्यापार करके बहुत सारा धन कमाया। बुढापा निकट आते देख उसने अपना व्यापार अपने बेटों के हाथ सौंपना चाहा, लेकिन उसके तीन बेटों में पहले दो बेटे — जीवदत्त और लक्षदत्त किसी काम के न निकले।

वे दोनों बुरे व्यसनों में पड़ कर हमेशा इधर-उधर भटकते रहते थे। घर पर रहना जैसे उन्हों नें सीखा ही न हो। तीसरा बेटा पिंगल अभी बीस साल भी पूरे न कर पाया था। इस कारण बूढा व्यापारी चिंता के मारे खाट से लग गया। उसने मरने के पहले अपनी सारी संपति अपनी पत्नी और तीन बेटों के बीच बराबर बांट दी। इस के कुछ दिन बाद उनका देहांत हो गया। उनके तीनों बेटों के नाम जीवदत्त, लक्षदत्त और पिंगल। अचानक एक साथ इतनी सारी संपत्ति हाथ लगने के कारण उनकी समझ में नहीं आया कि इस संपति को लेकर क्या करना है ?

अपने पिता के मरने के बाद दोनों बड़े बेटे जीवदत्त और लक्षदत्त अपने हिस्से का धन पानी की तरह बहाने लगे। उनकी माता ने सोचा कि बड़े बेटे दोनों नालायक़ हैं, इसलिए वह अपने हिस्से की संपति लेकर छोटे बेटे पिंगल के घर में ही रहने लगी। पिंगल के घर रहते हुए भी अपने बड़े बेटों के बिगड़ते हुए वह देख न पाई। कई बार उसने उन को सही रास्ते पर लाने के लिए बड़ी कोशिश की, कई तरह से समझाया,

उसने थोड़ी देर तक अपने पुत्रों के साथ वात्सल्यपूर्वक बातें कीं और समझाया- "बेटे, तुम दोनों तो बेड़ हो ! अपने पैरों पर आप खड़े हो सकते हो, मगर पिंगल छोटा है। इसलिए कुछ दिन तक उसके पास मेरा रहना जरूरी है। इसलिए मैं समझती हूँ कि उस को अकेले रहने देना भी उचित नहीं है। इस छोटी सी उम्र में उसके बिगड़ जाने की भी संभावना रहती है इसलिए तुम दोनों बुरा मत समझो ! पिंगल के शादी-शुदा हो जाने के बाद मैं तुम लोगों के घर आकर वहीं पर हमेशा केलिए रह जाऊँगी।"

इस पर दोनों बड़े पुत्र अपनी माँ पर झल्ला उठे और बोले- "तुम अपने छोटे बेटे के साथ ही रहना चाहती हो तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन हमारे पिता ने तुम्हारे नाम पर जो कुछ जमीन-जायदाद लिख दी है, उस में से हमारा हिस्सा दे दो।"

पर कोई फ़ायदा न रहा। आखिर ऊब कर उसने उन्हें समझाना ही छोड़ दिया।

जीवदत्त और लक्षदत्त अपनी संपत्ति के खत्म होते ही अपनी माँ की खोज करते हुए पिंगल के घर पहुँचे। पिंगल ने बड़े प्रेम के साथ अपने भाइयों का स्वागत किया। लेकिन वे पिंगल को झिड़क कर अपनी माता के पास पहुँचे और उससे अनुरोध किया कि वह उनके साथ रहें।

माता ने समझ लिया कि दोनों बड़े बेटे उसको अपने घर क्यों बुला रहे हैं और इस के पीछे उनका उद्देश्य क्या है। पति से प्राप्त उसके धन को हड़पने केलिए वे दोनों उसके प्रति कपट-प्रेम का अभिनय कर रहे हैं ! इसलिए

"बच्चो, मेरे ज़िंदा रहते तुम लोगों को मेरी जायदाद में से हिस्सा कैसे मिल सकता है ?" माँ ने अचरज में आकर पूछा।

"हमें इस बात का विश्वास नहीं है कि यादि हमने इस वक्त तुम से वसूल नहीं किया तो बाद को वह संपत्ति हमारे हाथ लगेगी ! तुम्हारी यह संपत्ति खर्च करके पिंगल तुम्हारा अंत कर दे तो हमारा क्या होगा ? आज के जमाने में किसी पर भी भरोसा नहीं रखा जा सकता है, माँ ! तुम तो

भोली भाली हो ! यकान मानो तुम्हारे अनंतर तुम्हारी संपत्ति का हमारा हिस्सा निश्चय ही हमारे हाथ नहीं लगेगा। हम भी तो तुम्हारे बेटे हैं। तुम्हारे और बेटों के साथ अन्याय होते उस वक्त तुम देख न सकोगी। इसलिए तुम हमारे हिस्से की संपत्ति अभी बांट कर दे दो। पिंगल पर हमारा बिलकुल भरोसा नहीं है। वह ज़रूर हमारे साथ धोखा देगा।" बड़े बेटों ने कहा।

अपने बड़े भाइयों की ये बातें पिंगल को अपमानजनक मालूम हुईं। उसने अपनी माँ को समझाया- "माँ, तुम चाहो तो बड़े भाइयों के साथ ही रहो ! मुझे तुम्हारी संपत्ति में से एक़ कौड़ी की भी जरूरत नहीं है।" पर माँ ने पिंगल की बात नहीं मानी। इस पर दोनों बड़े पुत्र क्रोध में आ गये और अपनी माँ को लाठियों से पीटने लगे। छोटे पुत्र पिंगल ने उनको रोका। इस पर वे दोनों भड़क उठे और उस पर लाठियों की वर्षा की।

उनकी माँ जैसे-तैसे घर से बाहर निकल आई और अपने पड़ोसियों को बुला लाई। उन लोगों ने दोनों बड़े भाइयों को खूब धिक्कारा। इसपर वे दोनों पिंगल के घर से निकलते समय यह धमकी दे गये- "तुम ऐसा मत समझो कि हम दुनियादारी का ज्ञान नहीं रखते। तुम दोनों को न्यायालय में ला खड़ा करेंगे। वहाँ पर तो हमारे हिस्से की संपत्ति हमें जरूर मिल जाएगी।" अब भी सही, तुम दोनों हमारी संपत्ति लौटाना चाहते हो तो सोच लो, तुम्हें हम एक हफ़्ते की अवधि दे रहे हैं।"

एक हफ़्ते के अन्दर जीवदत्त और लक्षदत्त ने न्यायालय में अपनी माँ और छोटे भाई के विरुद्ध फ़रियाद की। इस पर उनकी माँ और छोटे भाई पिंगल को न्यायालय से बुलावा आया। वे न्यायालय में हाज़िर हुए। न्यायाधिपति ने जीवदत्त और लक्षदत्त से घूस लिया था, इसलिए उसने जीवदत्त और लक्षदत्त की माँ और छोटे भाई के विरुद्ध फ़ैसला सुना दिया।

पिंगल को न्यायालय का फ़ैसला बड़ा ही अनुचित लगा। उसे इस बात का बड़ा दुख भी हुआ। अख़िर उस ने मामला उच्च न्यायालय में

पेश किया और कहा कि नीचे के न्यायालय में उसकी माँ तथा उसके प्रति अन्याय हुआ है। इसलिए उनके प्रति न्याय किया जाए। न्यायाधिपति ने एक महीने तक उन लोगों को बराबर न्यायालय में हाज़िर करवाया और आखिर माँ और छोटे पुत्र के अनुकूल फ़ैसला सुनाया।

वैसे फ़ैसला तो पिंगल और उसकी माँ के पक्ष में हुआ था, लेकिन इनके बीच बुजुर्ग बनकर समझौता करने की जिन लोगों ने कोशिश की उनके तथा न्यायालय के पीछे पिंगल और उनकी माँ की सारी संपत्ति समाप्त हो गई। जीवदत्त और लक्षदत्त भी एक दम कंगाल बन बैठे। अब पेट भरने का कोई उपाय न देख गलियों में जाकर भीख माँगने लगे।

न्यायालय के पीछे दौड़ते हुए उनका परिवार आर्थिक दृष्टि से एक दम तबाह हो गया। पर पिंगल अपनी बुरी हालत पर चिंतित न हुआ। उसने अपनी माँ को हिम्मत बंधाई। उसने सोचा कि अब उसे अपने पैरों पर आप खड़े हो जाने का कोई न कोई जरिया ढूँढना होगा। आख़िर उसे एक उपाय सूझा। कड़ी मेहनत करके अपने पेट भरने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। इसलिए वह एक जाल लेकर मछली पकड़ने के ख़याल से एक नदी के किनारे पहुँचा। वैसे वह उस पेशे से बिलकुल अनभिज्ञ था, फिर भी शाम तक नदी में जाल फेंक-फेंक कर उसने काफी मछलियाँ पकड़ लीं उन मछलियों को बाजार में बेच कर घर

केलिए आवश्यक नमक-दाल-चावल, मसाले आदि ख़रीद लाया ।

उस दिन से लेकर पिंगल दिन भर कड़ी मेहनत करके मछलियाँ पकड़ लाता । उन्हे बेच कर अपने दिन आराम से बिताने लगा । यह समाचार थोड़े दिनों में उसके भाइयों को मिला । उधर पिंगल के बड़े भाई कमाने का कोई उपाय न देख दर-दर जाकर भीख मांगने लगे । उस पेशे से तंग आकर जब उन्हें अपने छोटे भाई की खुशहाली की खबर मिली, तब वे उस वक्त पिंगल के घर पहुँचे, जब पिंगल मछलियाँ पकड़ने गया था ! अपनी माँ के आगे दुखड़ा रोते हुए कहा कि वे भूख के मारे तड़प रहे हैं । इसके पूर्व उन दोनों बेटों ने अपनी माँ के साथ अन्याय किया था । फिर भी मातृ-प्रेम के वशीभूत हो उनकी माँ वे सारी बातें भूल गई और उन्हें प्रेम से खाना खिलाया ।

जीवदत्त और लक्षदत्त ने अपनी करनी पर पश्चात्ताप प्रकट करके माँ से माफ़ी माँगी । माता भी उन के प्रति दया से भर उठी और समझाया कि पिंगल की गैर हाज़िरी में रोज़ खाना खाने केलिए आया करें । एक दिन पिंगल ने नदी में कई बार जाल फेंका पर एक भी मछली नहीं फंसी । वह अपनी इस बद क़िस्मती पर मन ही मन दुखी होते हुए शाम तक नदी में जाल फेंकता रहा, आख़िर असफल हो जाल को अपने कंधे पर डाल चिंतित होकर घर की ओर चल पड़ा ।

रास्ते में दूकानदार ने देखा कि आज पिंगल दूकान में चीजें ख़रीदे बिना घर जा रहा है, उसने

पिंगल को पुकारा ।

पिंगल ने दुकान में पहुँचकर दूकानदार को बताया कि आज उसके जाल में एक भी मछली नहीं फंसी, इसलिए उसके हाथ खाली हैं, एक कौड़ी भी नहीं है । इसपर दूकानदार मुस्कुरा कर बोला- "तुम चिंता न करो ! रोज इसी दूकान से तुम अपनी ज़रूरत की चीज़ें खरीद ले जाते थे न ! आज तुम्हारे हाथ धन नहीं है तो कोई बात नहीं; तुम अपनी ज़रूरत की चीज़ें लेते जाओ, दाम कल देना ।"

पिंगल ने दूकानदार की उदारता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की, तब अपनी ज़रूरत की चीज़ें लेकर उत्साह के साथ प्रति दिन से थोड़ी देर पहले ही घर पहुँचा । उस वक्त पिंगल के दोनों भाई आराम से भोजन करते हुए अपनी माता से हँस-हँस कर बातें कर रहे थे । अचानक पिंगल को घर में प्रवेश करते देख वे दोनों भाई लज्जा से भर उठे, अपने मस्तक झुकाकर घर से भागने को हुए ।

पिंगल ने प्रेम पूर्वक अपने बड़े भाइयों को गले से लगाया और बोला- "मेरे भाइयो, इस घर में जो कुछ है, उसे जी भर-कर खाइये । हम तीनों तो एक ही माँ के बेटे हैं । पुरानी बातों को भूल जाइये ।"

अपने छोटे भाई की बातें सुन कर बड़े भाइयों को बड़ा आनंद हुआ । वे पिंगल की तारीफ़ करते हुए बोले- "पिंगल, हमको पता न था कि तुम इतने अच्छे दिलवाले हो ! अगर

हमें मालूम होता तो तुम पर मुकद्दमा न चलाते और हमारी जायदाद के साथ तुम्हारी जायदाद भी बरबाद होने से बच जाती ।"

इतने दिन बाद अपने पुत्रों को फिर से आपसी वैर भूल कर एक होते देख उनकी माँ प्रसन्नता से गद् गद् हो गई ।

दूसरे दिन पिंगल समय पर नदी किनारे पहुँचा । उस दिन भी शाम तक कोशिश करने के बावजूद एक भी मछली न फंसी । इसपर वह अपनी बदक़िस्मती को रोते हुए घर लौट रहा था कि उस दिन भी दूकानदार ने उसे बुला कर सामान दे दिया ।

पिंगल ने देखा कि बराबर दस दिन तक उसे मछलियाँ नहीं मिली हैं । इसपर ख़ीझ कर ग्यारहवें दिन वह निकट के एक और सरोवर में पहुँचा ।

उस सरोवर में जाल फेंक कर पिंगल किनारे आ बैठा, उसने देखा कि एक घुड़ सवार के घोड़े की टापों से मैदान में धूल उड़ रही है ! पिंगल यह सोचने लगा कि वह आगंतुक कौन हो सकता है । तभी घुड़सवार पिंगल के समीप आ रुका, और वह घोड़े से उतर पड़ा और बोला- "पिंगल तुम्हें मेरी एक मदद करनी होगी ।"

किसी अजनबी का उसका नाम लेकर पुकारते देख पिंगल आश्चर्य में आ गया । वह उसकी ओर शंका भरी नज़र दौड़ाते हुए बोला- "आप मेरा नाम कैसे जानते हैं ? मुझसे कैसी सहायता चाहते हैं ?"
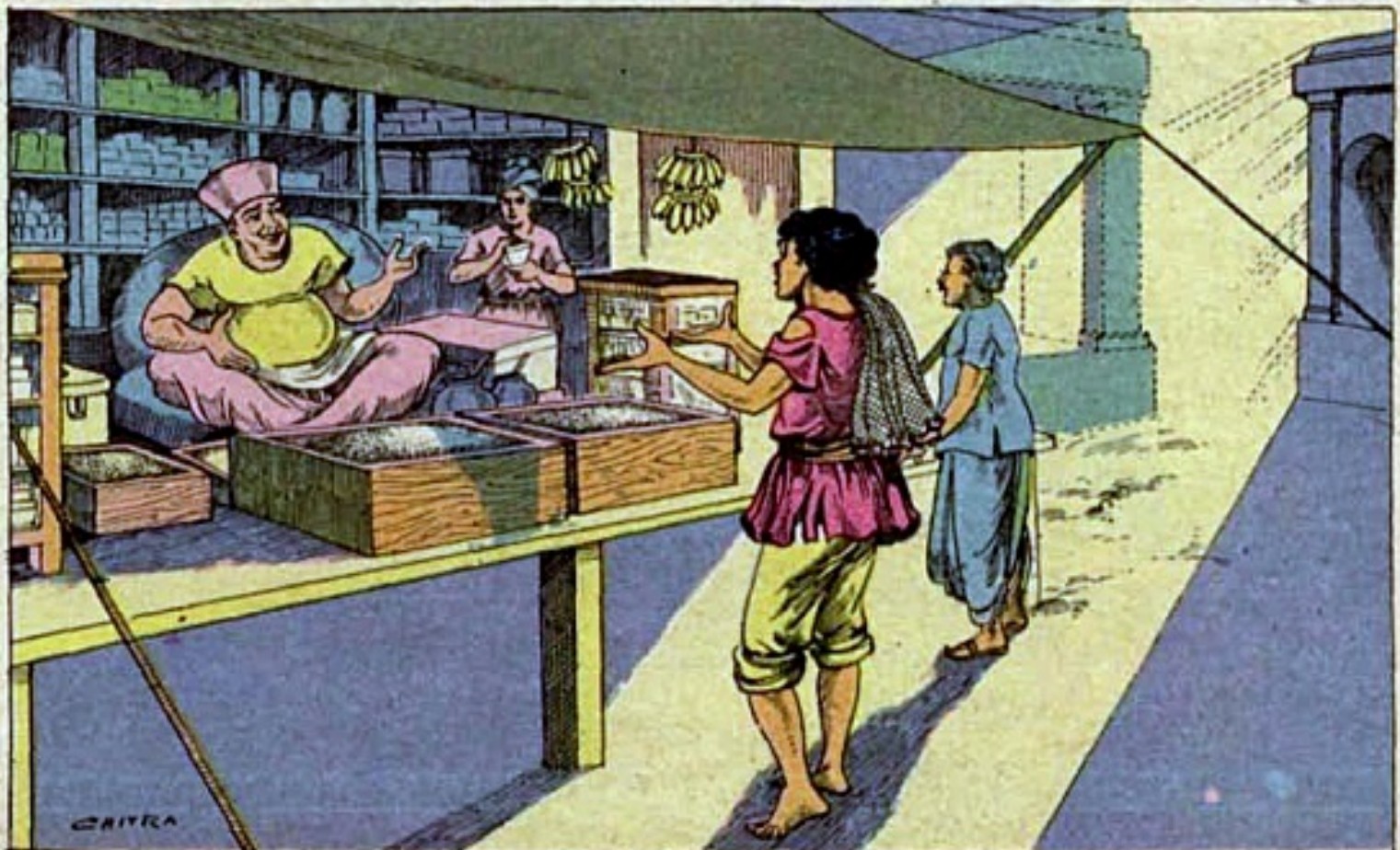
ये सवाल सुनकर अजनबी हँस पड़ा और बोला- "मेरे गुरूजी ने तुम्हारे पैदा होने के पहले ही मुझे बताया था कि तुम्हारा नाम क्या है, और यह भी कि इस वक्त तुम इस सरोवर के पास मछलियाँ पकड़ने आओगे । यह चालीस साल पहले की बात है । मैं तुमसे एक मदद चाहता हुं, करोगे ?"

"पहले बताइये कि आप मुझ से कैसी मदद चाहते हैं ? आप ने अपना परिचय भी तो नहीं दिया !" पिंगल ने विनय पूर्वक कहा ।

"मेरा नाम मण्डन है । तुम्हें जो काम करना है, वह कोई मुश्किल नहीं है । तुम रस्से से कस कर मेरे दोनों हाथ बांध दो । फि मुझे उठा कर इस सरोवर में डाल दो । थोड़ी देर बाद अगर मेरा सर पहले दिखाई दे तो तुम अपना जाल फेंक कर मुझे बाहर निकालो, यदि ऐसा न होकर मेरे पैर पहले दिखाई दे, तो तुम इस घोड़े को शहर में ले जाकर एक प्रसिद्ध व्यापारी कांचन मिश्र के हाथ सौंप दो, वे तुमको एक सौ अशर्फियाँ देंगे ।"

पिंगल ने मण्डन के अनुरोध का पालन करने का वचन दिया । मण्डन ने घोड़े की जीन से लटकने वाली लंबी रस्सी लाकर पिंगल के हाथ दे दी ।

पिंगल ने मण्डन के हाथों को पीछे की ओर खींच कर रस्से से बांध दिया, फिर उसको कंधे पर डाल कर सरोवर के पास पहुँचा और उस को सरोवर के जल में फेंक दिया ।

दो-चार मिनट तक सरोवर की लहरों में हलचल मची रही, फिर लहरों का उठना बंद हो गया । थोड़ी देर बाद मण्डन के पैर जल में से बाहर निकले । पिंगल ने सोचा- "बेचारा मर गया है !" यह सोचते मण्डन का घोड़ा लेकर पिंगल शहर में चला गया । वहाँ पर उसे प्रसिद्ध व्यापारी कांचन मिश्र की दूकान का पता लगाने में कोई परेशानी नहीं हुई । कांचन मिश्र ने पिंगल और उसके साथ घोड़े को देख सब कुछ समझ लिया, फिर मन ही मन सोचते हुए कि लोभ दुख का मूल है, गोलक में से सौ अशर्फ़ियाँ निकालीं, गिन कर पिंगल के हाथ सौंपते हुए बोला-"लड़के, यह बात तुम गुप्त रखो । तुम्हारे हित केलिए यही अच्छा है ।"

चार दूल्हे

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"मेरे मन में इस बात की शंका पैदा हो रही है कि इस आधी रात के वक़्त आप को इस मुसीबत में डालने वाला कोई भी क्यों न हो, आप दोनों में परस्पर गलतफ़हमी है। यह बात प्रकट है कि अधिकांश मानव अपने जीवन को सुखी बनाने के साथ-साथ अपने आत्मीय जन के जीवन को भी सुखी बनाने का भरसक यत्न करते हैं। पर इन प्रयत्नों में कभी-कभी विजय के साथ पराजय भी हाथ लगती है। यह विजय या पराजय भी इस बात पर निर्भर करती है कि अपने साथी जनों के बारे में मनुष्य क्या सोचता है। इसके उदाहरण के रूप में मैं आप को अनंतराम नाम के

बेताल कथाएँ
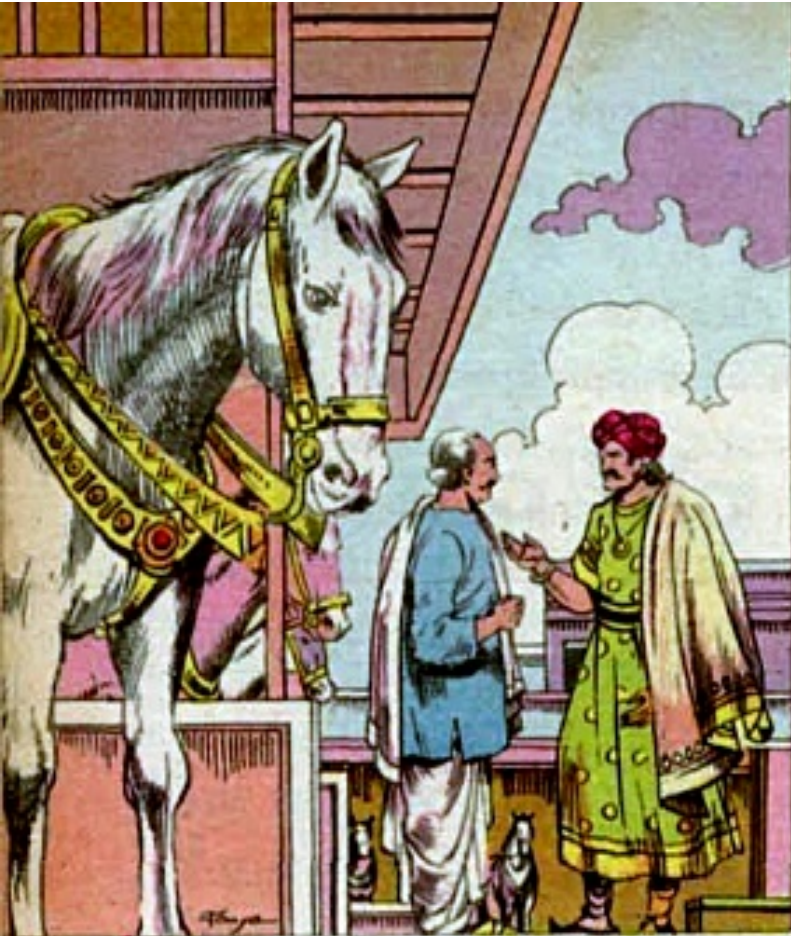
एक धनवान व्यक्ति की कहानी सुनाता हूँ, शायद इस कहानी के सुनने पर आपका थोड़ा-बहुत उपकार हो जाय। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।"

बेताल यों सुनाने लगा: अनंतराम बहुत धनवान था। उसकी इकलौती बेटी बड़ी रूपवती थी। योग्य युवक को अपना दामाद बनाकर वह अपनी सारी संपत्ति उसको सौंपना चाहता था।

अनंतराम के बचपन के चार अच्छे मित्र थे। वे चारों चार अलग-अलग गाँवों में स्थायी रूप से रहने चले गये थे। अनंतराम को मालूम हुआ कि उन चारों मित्रों के घर विवाह योग्य पुत्र हैं। उनमें से एक को अपने दामाद बनाने के विचार से अनंतराम उन गाँवों के लिए चल पड़ा।

सबसे पहले अनंतराम विजयपुरी के चन्द्रकांत से मिला। चन्द्रकांत अनंतराम से कहीं ज्यादा संपन्न व्यक्ति था। उसने बड़े ही आदरपूर्वक अनंतराम का स्वागत किया। बचपन की बातों की याद दिलाई। चन्द्रकांत का पुत्र पुष्पकांत अनंतराम को अत्यंत सुंदर और सुशील मालूम हुआ। उसकी विनयशीलता ने अनंतराम को बहुत प्रभावित किया।

बातचीत के सिलसिले में अनंतराम ने अपनी पुत्री की चर्चा छेड़ दी। अनंतराम की पुत्री का नाम सुनकर चन्द्रकांत बोला— "तुमने तो अपनी पुत्री का नाम चंपा बताया न? मेरे पुत्र के प्यारे घोड़े का नाम भी यही है, वह घोड़ा देखने में ऐसा लगता है, मानो देवलोक से उतरकर आया हुआ उच्चैश्रव हो। हाँ, तुमने शायद मेरी घुड़साल को नहीं देखा है? चलो, मैं तुम्हें मेरी घुड़साल दिखा देता हूँ।" यह कहते चन्द्रकांत अनंतराम को अपनी घुड़साल में ले गया।

वहाँ के घोड़ों को देखने पर अनंतराम चकित रह गया। उसके मुँह से बोल नहीं फूटे। उसकी सारी संपत्ति उन घोड़ों के मूल्य के बराबर नहीं थी।

अनंतराम विजयपुरी से निकलकर मल्लपुर पहुँचा। वहाँ पर उसके मित्र वीरभद्र ने भी उसका भव्य स्वागत किया। वीरभद्र उस गाँव में बड़ा लोक प्रिय था। गाँव के सारे मामले वीरभद्र के सामने पेश किये जाते थे।

भोजन के वक़्त अनंतराम वीरभद्र से बोला–"तुम्हें काफी यश तो जरूर मिला है, मगर चन्द्रकांत का सा वैभव तुम्हारा नहीं है!"

वीरभद्र अपने मित्र की बातें सुनकर गुस्से में आकर बोला–"दोस्त, बताओ, मेरे पास किस बात की कमी है?"

"मुझे लगा कि तुम्हारी सारी संपत्ति चन्द्रकांत के घोड़ों के मूल्य के बराबर भी नहीं है! एक लाख मुद्राओं के मूल्य के पंद्रह घोड़े उसके पास हैं!" अनंतराम ने कहा!

वीरभद्र पल भर मौन रहकर बोला– "चन्द्रकांत अपनी हैसियत से ज्यादा ठाट दिखाते हैं। वे अपने धन को वस्तुओं के रूप में बदलकर सबके सामने उसका प्रदर्शन करना चाहते हैं, अगर मैं चाहूँ तो उनसे कहीं अच्छी नस्ल के पचास घोड़े खरीद सकता हूँ। लेकिन इससे फ़ायदा ही क्या है? मेरा पुत्र दिन भर घोड़े पर सवारी करके अयोग्य बन जाए, यह कदापि मैं पसंद नहीं करता।"

इसके अलावा वीरभद्र ने अनेक प्रकार से चन्द्रकांत की कड़ी आलोचना की।

वहाँ पर नागानंद सरल जीवन बिता रहा था। उसने स्नेह पूर्वक अनंतराम का स्वागत करके अपनी हालत का परिचय दिया। बातों के सिलसिले में चन्द्रकांत और बीरभद्र की चर्चा चल पड़ी, पर वह सिर्फ़ गहरी सांस लेकर चुप रह गया। उसने अपनी कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की।

नागानंद का पुत्र सत्यानंद बोला– "मेरे पिताजी की इच्छा है कि मैं भी पुष्पकांत जैसा वैभवपूर्ण जीवन बिताऊँ। मैंने उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए थोड़े से प्रयत्न भी किये, उनमें कुछ हद तक मैंने सफलता भी प्राप्त की है, पूर्णरूप से सफलता हासिल करनी है तो बहुत सारे धन की ज़रूरत है। इतना धन कमाना चाहे तो हर प्रकार का कार्य करने में लज्जा-शर्म को छोड़ना पड़ेगा। वरुणपुरी तो हमारा परिचित है। इसलिए मुझे किसी और गाँव या शहर में जाना पड़ेगा। मगर मेरे पिताजी की तबीयत ठीक न रहने से मुझे यहीं पर रहना पड़ रहा है!"

अनंतराम ने नागानंद के सामने भी अपनी पुत्री का प्रसंग नहीं छेड़ा। दो दिन बाद वहाँ से चलकर अनंतराम कृष्णपुरी पहुँचा और अपने मित्र सोमदत्त से मिला।

उसका विचार था कि अनेक दास-दासियों के होने पर परिवार के लोग आलसी बन जाते हैं, प्रति दिन मिष्टान्नों का सेवन करना स्वास्थ्य के लिए खराब होता है, चौमंजिले मकान बनवाने से उसके गिर जाने का हमेशा डर लगा रहता है, इसलिए उसके पास चन्द्रकांत से कहीं ज्यादा धन-संपत्ति के होने पर भी वह साधारण जीवन बिता रहा है!

वीरभद्र के पुत्र रुद्र ने भी अपने पिता के विचारों का समर्थन किया।

अनंतराम ने वीरभद्र के सामने अपनी पुत्री की चर्चा नहीं की, दो दिन वहाँ बिताकर अनंतराम वरुणपुरी पहुँचा।

सोमदत्त अत्यंत साधारण जीवन बिता रहा था। अनंतराम उसके घर पर टिकने में भी संकोच का अनुभव करने लगा। पर सोमदत्त ने बड़े ही आदर पूर्वक उसका स्वागत किया।

सोमदत्त और उसका पुत्र भीमदत्त-दोनों एक ही प्रकार के विचार रखते थे। उनके आदर्श भी एक थे। उनका ख्याल था कि अगर मनुष्य को सुखमय जीवन बिताना है तो संतुष्टि का होना नितांत आवश्यक है। जो कुछ है, उससे ही संतुष्ट हो, फ़ुरसत के वक़्त जीवन और जगत को समझने की चेष्टा करते हुए दर्शन और वेदांत संबंधी ग्रंथ पढ़ते हुए वे अपना समय बिता रहे थे। वे दोनों हमेशा प्रसन्न दिखाई देते थे।

लेकिन सोमदत्त की पत्नी हमेशा इस बात की चिंता किया करती है कि उसके यहाँ क़ीमती गहने, दास-दासियाँ और महल नहीं हैं।

सोमदत्त ने अपनी पत्नी के सामने स्पष्ट बताया—"सुनो, आशा का कोई अंत नहीं हैं! ये सारी चीज़ें प्राप्त करने के बाद तुम्हारे मन में महारानी बनने की इच्छा पैदा होगी! इस प्रकार किसी न किसी दशा में मनुष्य को असंतुष्ट होना ही पड़ता है। इसलिए मन पर नियंत्रण करने पर किसी प्रकार का असंतोष या दुख न होगा।"

अनंतराम अपने गाँव पहुँचा। इन चारों दूल्हों का समाचार पत्नी को सुनाकर बोला—"मैं समझता हूँ कि हमारी बेटी नागानंद के पुत्र सत्यानंद के साथ विवाह करने पर ही ज्यादा सुखी रह सकती है।"

अनंतराम की पत्नीं ने मान लिया। कुछ दिन बाद सत्यानंद और चंपा का विवाह संपन्न हुआ।

वेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजन, मेरा विश्वास है, कि अनंतराम ने अपने बचपन के मित्र और उनके पुत्रों के

संबंध में गलत अंदाजे लगाये हैं। पुष्पकांत वैभव की ज़िंदगी बिता रहा है, रुद्र लोभ और ईर्ष्या से दूर है, भीमदत्त दर्शन और वेदांत ग्रंथों का अध्ययन करते हुए जीवन और जगत को समझने की महान कामना रखता है। इन सब को छोड़कर अनंतराम ने अपनी पुत्री का विवाह सत्यानंद के साथ करने में जल्दबाजी तो नहीं की? इस शंका का समाधान जानकर भी न देंगे तो आपका सर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया—"अनंतराम का निर्णय सब प्रकार से सही है, इसमें रत्ती भर भी भूल नहीं है। पुष्पकांत की दृष्टि में अनंतराम की संपत्ति कुछ भी नहीं है। अगर चंगा उसकी वधू बनकर जाएगी तो वह भी उसके क़ीमती घोड़ों में से एक के बराबर मानी जाएगी। लेकिन उसके परिवार में उसे एक बहू के जैसा आदर प्राप्त न होगा। अब रही रुद्र की बात! उसके यहाँ जो कुछ नहीं है, उनको वह अनावश्यक समझता है, पर अपने अभाव को कभी स्वीकार नहीं करता। अब भीमदत्त के मन में जीवन व जगत के संबंध में कोई आकर्षण व अभिरुचि नहीं है। ऐसा व्यक्ति अगर विवाह करता है तो उसकी पत्नी यातनाओं का शिकार हो जाएगी। अब सत्यानंद की बात सुनिये, वह ईर्ष्या नहीं करता, पर बड़े लोगों के साथ उसके मन में एक स्वस्थ प्रतियोगिता की कामना है, मगर जीवन की अन्य जिम्मेदारियों को त्याग कर केवल धन कमाने का लोभ उसके अन्दर नहीं है। अपने पिता के स्वस्थ होने तक उसके पास रहकर उसकी सेवा करने की इच्छा रखनेवाला पितृ भक्त है। वह ऐसा व्यक्ति ससुर से प्राप्त संपत्ति के द्वारा प्रयत्न करके कभी न कभी चन्द्रकांत से बढ़कर वैभवपूर्ण ज़िंदगी बिता सकता है।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पुन: पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

मित्रता का धर्म

सीतापुर के जौहरियों में देवगुप्त सब से बड़ा धनी था। बचपन में सीतापुर के राजा विजयशील के साथ उसने एक ही गुरुकुल में शिक्षा पाई थी। इस कारण विजयशील के राजा बनने के बाद भी उनके साथ देवगुप्त की गहरी मैत्री चालू थी।

देवगुप्त देश-विदेशों के साथ व्यापार करता था। समुद्री व्यापार के काम पर अनेक प्रदेशों में हो-आया करता था। एक बार उसने विदेशी यात्रा की पूरी तैयारियाँ कीं और रवाना होने के पहले राजा के दर्शन करने गया।

राजा विजयशील ने आदर पूर्वक उसका स्वागत किया, यात्रा का समाचार सुनकर बोले—"समुद्री यात्राएँ कई यातनाओं से भरी होती हैं। हम अब बृद्ध हो चले हैं। तुम व्यापार की जिम्मेदारी अपने पुत्र को सौंपकर विश्राम क्यों नहीं करते?"

"महाराज, व्यापार के काम पर मैं इस बार अपनी अंतिम यात्रा करने जा रहा हूँ। अपने साथ अपने पुत्र को भी ले जा रहा हूँ। वैसे उसके मन में इस पेशे के प्रति उत्साह भी है, लेकिन पर्याप्त अनुभव नहीं है। मैं समझता हूँ कि इस यात्रा के द्वारा उसको काफी अनुभव प्राप्त होगा। इसके बाद मैं आपके सुझाव के अनुसार पूर्ण रूप से विश्राम करना चाहता हूँ।" देवगुप्त ने जवाब दिया।

इसके बाद राजा से अनुमति लेकर देवगुप्त घर पहुँचा। अपने पुत्र को साथ लेकर एक जहाज में समुद्री व्यापार पर चल पड़ा। उसने अनेक द्वीपों में जाकर माल खरीदा, बेचा, साल भर में काफी धन कमाकर अपने घर लौट आया। इस

गोकुलदास

बीच राज विजयशील का स्वर्गवास हो गया और उनका पुत्र जयशील गद्दी पर बैठा।

देवगुप्त अपने बचपन के मित्र राजा विजयशील की मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यंत दुखी हुआ। नये राजा जयशील के शासन में जो परिवर्तन आये, उन्हें समझने में देवगुप्त को ज्यादा समय न लगा। चूंकि वह राजपरिवार का हितैषी था, इसलिए एक दिन वह नये राजा जयशील को देखने पहुँचा।

कुशल प्रश्न के बाद जयशील ने देवगुप्त से अपने शासन के बारे में पूछा। इसके उत्तर में देवगुप्त ने कहा—"वैसे शासन तो बड़ा अच्छा चल रहा है। मुट्ठी भर राजकर्मचारियों की कृपा से आपके पिता के शासन काल में व्यापारी जिस माल पर ज्यादा से ज्यादा एक दीनार लाभ कमा पाते थे, अब दस दीनार कमा रहे हैं। सिपाहियों को देख उस जमाने में केवल अपराधी ही डरते थे, आज सभी नागरिक उनको देख भयकंपित हो रहे हैं। उन दिनों में हमने सिर्फ़ भगवान के दर्शन करने के लिए शुल्क चुकाकर अपनी कंजूसी का परिचय दिया, मगर आज आपके द्वारपालों ने यह साबित किया है कि राजा और देवताओं के दर्शन में कोई अंतर नहीं है।"

देवगुप्त का उत्तर सुनकर राजा जयशील समझ गये कि राज कर्मचारी व्यापारियों से रिश्वत ले रहे हैं। सिपाही जनता को सता रहे हैं और उनके दर्शन करने के लिए आनेवालों से द्वारपाल कुछ न कुछ वसूल कर रहे हैं।

इस पर राजा ने देवगुप्त के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। एक महीने के अन्दर घूसखोर कर्मचारियों को हटाकर जनता का प्यार प्राप्त किया।

देवगुप्त भी इस बात पर बड़ा खुश हुआ कि राजपरिवार के साथ उसकी जो मैत्री थी, उस मित्रता का धर्म उसने निभाया है।
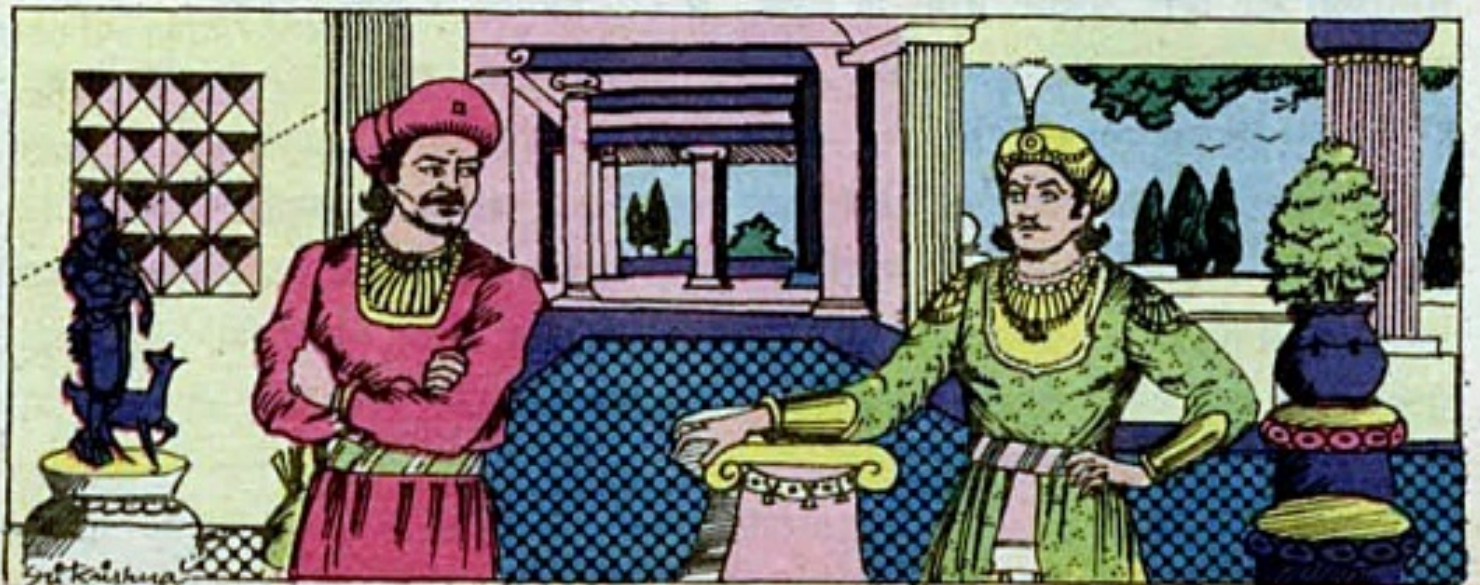
मानसिक शक्तियाँ

कोसल देश में समरपुंगव नामक एक युवक रहा करता था। उसने शारीरिक बल का प्रदर्शन कराने वाले मल्ल युद्ध, मुष्टि युद्ध आदि में असाधारण कुशलता प्राप्त कर ली थी। कोसल देश में ही नहीं, बल्कि चारों तरफ़ के देशों में भी वह इस बात के लिए मशहूर हुआ कि शारीरिक शक्ति में उसकी समता कर सकने वाला कोई नहीं है।

अपने हाथों हारने वाले मल्ल योद्धाओं के बारे में सोचने पर कभी कभी समरपुंगव के मन में आश्चर्य पैदा होता था। उनमें कुछ लोग उससे कहीं ज्यादा शारीरिक बल रखते थे, कुछ मल्ल युद्ध के रहस्य जानने वाले कुशल योद्धा थे। फिर भी उससे हार जाते हैं तो इसका अर्थ यही है कि वे उसके सही प्रति द्वन्द्वी नहीं हैं; यह विश्वास समरपुंगव के मन में जम गया।

एक बार वार्तालाप के संदर्भ में समरपुंगव ने अपने गुरु अजित मल्ल से कहा—"गुरुजी, मैंने कई पहलवानों को हरा दिया। यह मेरे लिए कोई गर्व करने की बात नहीं है। क्योंकि मेरे विचार से वे लोग मेरे सही प्रति द्वन्द्वी नहीं हैं।"

समरपुंगव की बातें सुनकर अजित मल्ल मुस्कुरा कर बोले—"खासकर मल्ल युद्ध जैसी विद्याओं के लिए केवल शारीरिक बल पर्याप्त नहीं है, कुछ अन्य शक्तियों की भी आवश्यकता होती है।"

समरपुंगव ने सविस्तार उनका परिचय करानेका गुरुजी से निवेदन किया। लेकिन अजित मल्ल ने बताया—"समय आने पर तुम खुद ये बातें समझ जाओगे। अनुभव के द्वारा प्राप्त करने वाला ज्ञान तुम्हारे भविष्य के लिए कहीं ज्यादा लाभदायक सिद्ध होगा।"

अमरनाथ शुक्ल

गुरुजी के इस उत्तर से वह पूर्णरूप से संतुष्ट नहीं हुआ। इसलिए कुछ दिन बाद समरपुंगव अपने सही प्रत्यर्थी की खोज में देशाटन पर निकल पड़ा।

कई दिन बाद वह कामरूप राज्य में पहुँचा। एक दिन वह पहाड़ी रास्ते से चला जा रहा था कि उस वक़्त अचानक निकुंभ नामक एक भयंकर राक्षस से उसकी मुलाक़ात हुई।

महाकाय निकुंभ एक पहाड़ी गुफा में निवास करता था। भूख लगने पर वह आसपास के गाँवों में जाकर मनुष्यों और पालतू जानवरों को पकड़ कर खा जाता था।

कामरूप के राजा अम्बिल ने उस राक्षस का संहार करने के लिए कई बार सैनिकों को भेजा। असंख्य सैनिकों को हमला करते देखकर भी निकुंभ विचलित नहीं होता था, उल्टे उच्च स्वर में हुंकार करता था। इस पर सैनिक जान के डर से भाग जाते थे। इस कारण उसका हौशला कहीं ज्यादा बढ़ गया था। वह हद से अधिक घमण्डी भी हो चला था।

निकुंभ को देखते ही समरपुंगव के अन्दर उत्साह उमड़ पड़ा। उसने ताल ठोंक कर निकुंभ को ललकारा। कई वर्ष बाद एक मनुष्य के द्वारा उसे ललकारते देख पल भर के लिए वह चकित रह गया, फिर उसने भी हुंकार करते हुए समरपुंगव को ललकारा। एक मानव को इस प्रकार ललकारते देख निकुंभ के मन में आश्चर्य के साथ भय भी पैदा हुआ।

समरपुंगव उछल कर राक्षस की ओर कूद पड़ा। इस प्रयत्न में उसके पैर से ठोकर खाकर एक चट्टान लुढ़कते हुए राक्षस की ओर सरकने लगी। उससे बचने के लिए राक्षस थोड़ा हट गया। इस बीच समरपुंगव ने राक्षस पर हमला करके मुक्के मार कर उसको नीचे गिरा दिया।

समरपुंगव के आघात से निकुंभ का सर चकरा गया। वह संभल कर उठने को

हुआ था कि समरपुंगव ने उस पर लात और मुक्कों का प्रहार किया।

दोनों के बीच थोड़ी देर तक भयंकर युद्ध हुआ। आखिर राक्षस समरपुंगव के हाथों मारा गया। लेकिन समरपुंगव भी राक्षस के आघातों से घायल हो बेहोश हो गया।

दूर से इस दृश्य को राजा के गुप्तचरों ने देखा और दौड़ते हुए जाकर राजा को इसकी सूचना दी। राक्षस से पिंड छूट जाने की खबर सुनकर राजा मुस्कुरा उठे, पर दूसरे ही क्षण मन में चिंतित होकर मंत्री से बोले–"निकुंभ राक्षस का वध करने वाले के होश में आने के पहले ही हमें उसका अंत कर देना होगा। तुम लोग शीघ्र तैयार हो जाओ।" मंत्री की समझ में न आया कि निकुंभ जैसे भयंकर राक्षस का वध करके देश का हित करने वाले का संहार राजा क्यों करना चाहते हैं। आखिर उनका उद्देश्य क्या है?

राजा और मंत्री थोड़े से सैनिकों को साथ लेकर उस पहाड़ी प्रदेश में पहुँचे। तब तक कई लोग समरपुंगव को घेरे हुए थे। कुछ लोग बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ समरपुंगव के घावों पर दवा लगा कर पट्टी बांध रहे थे।

राजा ने उस दृश्य को देखकर अपनी तलवार को म्यान में लौटा दिया। इसके बाद उन्होंने समरपुंगव को प्रणाम करके कहा–"मैंने सोचा था कि निकुंभ

जैसे राक्षस का वध करने वाले आप उससे भी कहीं ज्यादा भयंकर होंगे। यह सोचकर मैं इस भ्रम में आ गया था कि एक का पिंड छुड़ाने पर उससे भी भयंकर व्यक्ति से पाला पड़ा है। इस ख्याल से मैं आप का संहार करने के लिए यहाँ पर आया। मेरे इस विचार पर स्वयं मुझे लज्जा हो रही है।"

"महाराज, जनता का हित चाहने वाले प्रत्येक राजा के मन में ऐसा विचार पैदा होता है। इसमें आपका कोई दोष नहीं है।" समरपुंगव ने राजा के विचारों का समर्थन करते हुए कहा।

यह जवाब सुनकर राजा संतुष्ट हुए और बोले–"आप या तो देवताओं का अंश लेकर पैदा हुए हैं या अतींद्रिय शक्तियाँ रखते हैं। मेरे भारी सैनिक दलों को निकुंभ ने अपनी हुंकार से ही डरा कर भगा दिया है।"

"महाराज, मेरे अन्दर देवताओं का अंश अथवा अतींद्रिय शक्तियाँ बिलकुल नहीं हैं, मैं इस वक़्त अपने गुरुजी के उपदेशों के रहस्य को समझ पाया हूँ कि दैहिकबल के साथ अन्य शक्तियों की भी आवश्यकता होती है। वे शक्तियाँ हैं–मन की दृढ़ता, लगन और आत्मविश्वास। इसी कारण राक्षस को देखने पर मेरे भीतर यही विचार आया कि मेरी समता कर सकनेवाला मिल गया है, पर मेरे मन में यह विचार बिलकुल न आया कि वह एक भयंकर राक्षस है। लेकिन आप के सैनिकों के मन में पहले से ही इस बात का डर घर कर गया था कि वह एक भयंकर राक्षस है। वह मानवों से अधिक शारीरिक बल रखता है। इस कारण उसका सामना करना संभव नहीं है।" समरपुंगव ने कहा।

ऐसे महान योद्धा समरपुंगव की विनय शीलता पर राजा बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद राजा समरपुंगव को राजसम्मान के साथ राजधानी में ले गये। उसका सत्कार किया। कुछ दिन बाद उसको आदर सहित विदा कर दिया।

भगवान बुद्ध के समय में अनाथपिंडक नामक एक वैश्यश्रेष्ठ रहा करते थे। बुद्ध के प्रति उनके मन में अपार भक्ति और श्रद्धा थी। उन्होंने जेतवन में बुद्ध के वास्ते ५४ करोड़ रुपये खर्च करके एक आराम गृह बनवाया। वे प्रति दिन तीन बार बुद्ध भगवान के दर्शन किया करते थे। कभी-कभी बुद्ध अपने शिष्यों के साथ उनके घर भी जाया करते थे।

अनाथपिंडक का महल सात मंजिलवाला था और उस महल के साथ प्राकार थे। उनमें मध्य प्राकार के अन्दर एक क्षुद्र देवी अपनी संतान के साथ निवास किया करती थी। वह बुद्ध भगवान से मन ही मन जलती थी। उस महल के अन्दर जब-तब बुद्ध भगवान का आना उसे बिलकुल पसंद न था। इसलिए वह एक मानवी का रूप धर कर अनाथपिंडक के खजांची के पास पहुँची और बोली"–आप लोग बुद्ध को इस महल के अन्दर क्यों प्रवेश करने देते हैं? ऐसे व्यक्ति का प्रवेश इस घर के लिए हानिकारक है।" इस पर खजांची ने उसको खरी-खोटी सुनाकर वापस कर दिया। इसके बाद वह अनाथपिंडक के पुत्र के पास पहुँची, वहाँ पर भी बुद्ध के विरुद्ध शिकायत करके अपमानित हो चली गई।

काल-क्रम में अनाथपिंडक का खर्च बढ़ता गया और उनकी आमदनी घटती गई। वे व्यापार के मामलों में भी बिलकुल दिलचस्पी नहीं लेते थे। इसके अलावा अन्य कार्यों में भी उनका नुक़सान हुआ। व्यापारियों ने उनसे १८ करोड़ मुद्राएँ उधार ली थीं। पर वह धन उन लोगों ने न लौटाया ही था और न अनाथपिंडक ने कभी उनसे मांगा ही था। इसके

अलावा और १८ करोड़ मुद्राएँ अचिर-वती नदी के किनारे कलशों में भर कर गड़वा दी थीं जो नदी में बाढ़ आने की वजह से कगार के बह जाने पर बह कर समुद्र में जा मिले।

इन सब कारणों से अनाथपिंडक थोड़े समय में ही निर्धन हो गया। तिस पर भी वह बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराते ही रहें, मगर पहले जैसे भारी भोज नहीं देते थे। एक दिन बुद्ध भगवान ने अनाथपिंडक से पूछा—"वत्स, क्या तुम इस हालत में भी बराबर दान देते चले जा रहे हो?"

अनाथपिंडक व्याकुल होकर बोले—"भगवन, मैं दान तो कर रहा हूँ, पर वह सिर्फ़ मांड़ मात्र है।"

उनकी व्याकुलता को भांप कर बुद्ध भगवान बोले—"वत्स, चिंता न करो। जब तक हृदय निर्मल होगा, तब तक मांड दान करने पर भी उसका फल अच्छा होगा।"

अनाथपिंड़क को निर्धन हुए देख क्षुद्र देवी साहस करके उनके पास पहुँची और पूछा—"महाशय, आप बुद्ध को अपने महल के अन्दर क्यों प्रवेश करने देते हैं? आप मन लगाकर अपना व्यापार किया कीजिए। खोई हुई सारी संपत्ति फिर से कमाने का प्रयत्न कीजिए। मैं आप के महल के चौथे प्राकार में रहने वाली देवी हूँ। आप के हित की कामना से समझा रही हूँ।"

इस पर अनाथपिंडक क्रोध में आकर बोले—"तुम इसी वक्त मेरे महल को छोड़ कर चली जाओ।"

"क्या आप यह समझते हैं कि मैं हमेशा के लिए इसी महल को अपना निवास बना कर रहूँगी? मुझे इससे अच्छे महल मिल जाएँगे।" यों कहकर क्षुद्रदेवी अपने बच्चों को साथ लेकर वहाँ से चली गई।

क्षुद्र देवी ने सब कहीं खोज की, मगर उसे ऐसा अच्छा महल कहीं दिखाई नहीं दिया। इसलिए वह मन ही मन यह सोच कर पछताने लगी कि मैं आवेश में आकर अनाथ पिंडक के सुंदर महल को क्यों छोड़ आई? वह जिस घर को छोड़ आई थी, उसमें फिर से जाने में लज्जा का अनुभव करने लगी। वह जब किसी निश्चय पर पहुँच पाई, तब ग्राम देवी की सलाह लेने केलिए उसके पास पहुँची।

ग्राम देवी ने उसे समझाया—"तुमने अनाथ पिंडक के महल को छोड़ कर बड़ी भूल की। अगर तुम फिर से उस महल में जाना चाहती हो तो एक काम करो। व्यापारियों से अनाथपिंडक को १८ करोड़ मुद्राएँ मिलनी हैं। तुम उसके मुंशी के रूप में जाकर उन व्यापारियों से १८ करोड़ मुद्राएँ वसूल कर लाओ। साथ ही अनाथ पिंडक के १८ करोड़ मुद्राओं से भरे जो कलश समुद्र में मिलगये हैं उनको ले आओ; इसके अलावा अमुक जगह अनाथपिंडक की १८ करोड़ मुद्रा मूल्य की संपत्ति है।

यह बात कोई नहीं जानता। तुम वह संपत्ति अनाथपिंडक को सौंप दो। इसके बाद तुम उनके पास जाकर अपनी करनी के लिए क्षमा मांग लो। उनसे प्रार्थना करो कि वे तुमको अपने महल में रहने की अनुमति दें।"

क्षुद्र देवी ने अनाथपिंडक की १८ करोड़ मुद्राएँ व्यापारियों से वसूल कीं। समुद्र के अन्दर से धन से भरे कलश भी ले आई। इसके साथ १८ करोड़ मुद्रा मूल्य की जायदाद अनाथपिंडक को सौंप कर क्षुद्र देवी ने कहा–"महानुभाव, मेरी अक़्ल ठिकाने लग गई है। मुझे क्षमा करके अपने महल में रहने की अनुमति दीजिए।"

"तुम बुद्ध भगवान के पास जाकर उनसे क्षमा मांग लो।" अनाथपिंडक ने कहा।

क्षुद्र देवी अनाथपिंडक के साथ जेतवन पहुँची, बुद्ध भगवान के दर्शन करके सारी बातें उन्हें सुनाकर अपनी करनी के लिए क्षमा मांग ली।

सारा वृत्तांत सुनकर बुद्ध भगवान बोले– "दुष्कर्म करने वाला व्यक्ति अपने कर्म के फलीभूत होने तक यही सोचता है कि वह अच्छा कर्म कर रहा है। मगर जब उसका फल भोगने का वक़्त आता है, तभी उसे सचाई का बोध होता है। इसी प्रकार सत्कर्म करने वाला व्यक्ति अपने कर्म के परिपक्व होने तक यह सोचा करता है कि वह दुष्कर्म कर रहा है। वह भी जब कर्म-फल का अनुभव करने लगता है, तभी सचाई का पता पाता है। मेरे पूर्व कथन का उदाहरण यह क्षुद्र देवी है। इसने सोचा कि मैं अच्छा कर्म कर रही हूँ, दूसरे कथन का उदाहरण यह अनाथपिंडक है, ये यह सोचकर मन ही मन पछताते रहें कि ये दुष्कर्म कर रहे हैं। कर्म के परिपक्व होने के बाद ही इस बात का पता चला कि किसका कर्म दुष्कर्म है और किसका सत्कर्म।"

यह उपदेश सुनने पर क्षुद्र देवी का मन बदल गया। बुद्धदेव के प्रति अपनी ईर्ष्या त्याग दी, और अपने बच्चों के साथ अनाथ पिंडक के महल के चौथे प्राकार में फिर से निवास करने लगी।
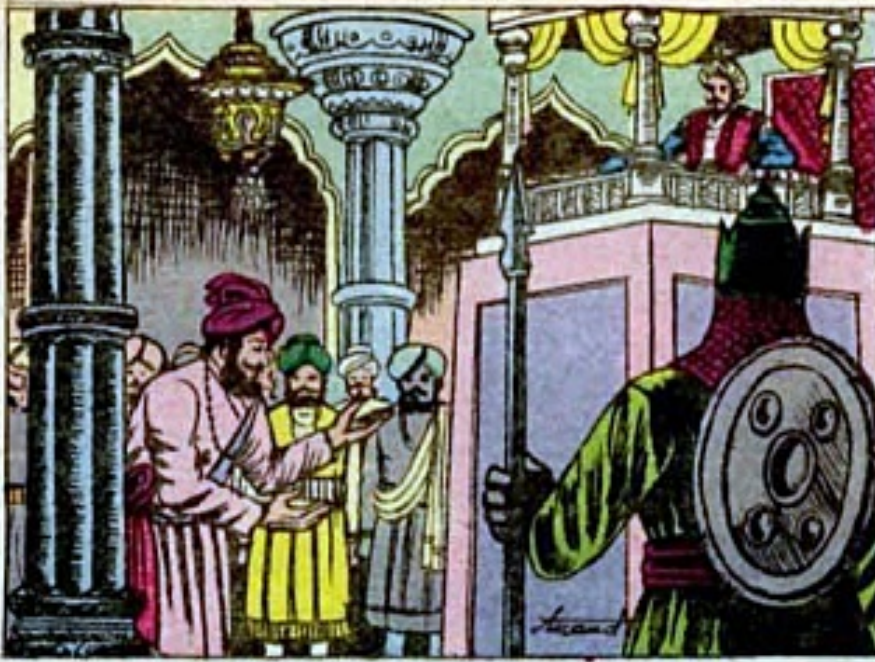
हुमायूँ और शेरशाह

बाबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूँ ई. सन् १५३० में २३ साल की उम्र में गद्दी पर बैठा। उस समय मुगल साम्राज्य की राजधानी आगरा थी। वह विलासी था, इसलिए उसने अपने पिता के द्वारा स्थापित साम्राज्य को दृढ़ बनाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

उस समय अफगान शेरशाह देश में शक्तिशाली बनता जा रहा था। बिहार के एक जागीरदार का पुत्र शेरशाह का असली नाम फरीद था। बचपन में वह अपनी सौतेली माँ के द्वारा अपमानित होकर जौनपुर भाग गया था।

एक बार फरीद ने अपनी जवानी में अकेले ही शेर का सामना करके उसको मार डाला था। उस युवक के साहस से मुग्ध होकर बिहार के सुलतान ने उसको "शेरशाह" की उपाधि दे दी। शेरशाह ने सैनिक संगठन और व्यूह-रचना में बाबर को आदर्श बनाकर अथक परिश्रम किया।

अल्पकाल में ही वह बिहार का शासक बन बैठा। दिन प्रति दिन बलशाली होते जानेवाले शेरशाह के आतंक का सामना हुमायूं को करना पड़ा। उन दोनों के बीच कई युद्ध हुए, पर युद्ध के प्रति विमुखता होने के कारण लगभग सभी युद्धों में हुमायूं हार गया।

एक बार शेरशाह की फ़ौज के पंजे से बचने के लिए हुमायूं और उसके सैनिकों को गंगा नदी में कूदकर भाग जाना पड़ा। सैकड़ों सैनिक उस प्रवाह में बह गये। हुमायूं कुशल तैराक न था, इसलिए उसकी जान खतरे में पड़ गई।

प्रवाह के थपेड़ों से चोट खाकर तड़पते हुमायूं को देख एक भिश्ती ने अपने चमड़े के मशक में हवा भरकर गंगा में छोड़ दिया और उसके सहारे तैरकर हुमायूं किनारे आ गया। इस प्रकार एक साधारण व्यक्ति ने हुमायूं के प्राण बचाए।

अपने प्राण बचाने वाले के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए हुमायूं ने उसको एक दिन के लिए गद्दी पर बिठाया। उसने अपने शासन की याद को स्थाई बनाने के लिए अपनी चमड़े की मशक को टुकड़ों में काट दिया और सिक्कों के रूप में बांट दिया।

इसके बाद हुमायूं ने अपनी गद्दी बचाने के वास्ते जो प्रयत्न किये, उनमें वह सफल न हो सका। आखिर दुश्मन के हमलों से तंग आकर उसे उमरकोट के एक हिन्दू राजा के महल में आश्रय लेना पड़ा। उसी समय हुमायूं की बेगम हमीदाबानू ने अकबर को जन्म दिया।

दिल्ली पर अधिकार करने के बाद शेरशाह ने धीरे-धीरे उत्तर भारत तथा पूर्वी भारत के प्रदेशों पर भी विजय प्राप्त की। अपने शासन को दृढ़ बनाने के बाद सूरवंशी शेरशाह ने शासन-पद्धति में अनेक सुधार किये और एक समर्थ और आदर्श शासक कहलाया।

बाद को शेरशाह ने अपना नाम शेरख़ाँ रख लिया और राजपूतों के साथ कई युद्ध किये। जब लड़ाई कालिंजर क़िले के समीप चल रही थी, तब बारूद के गोदाम में आग लग गई। उस समय शेरशाह गोदाम के निकट था, इसलिए वह घायल हुआ और मर गया।

हुमायूँ इस बीच कंदहार भाग गया था। शेरशाह की मृत्यु और भारत के शासन में अस्त-व्यस्तता की ख़बर हुमायूँ तक पहुँची। अच्छा मौक़ा देखकर हुमायूँ हिन्दुस्तान आया और पंद्रह साल पूर्व खोये हुए राज्य को फिर से पाने का प्रयत्न करने लगा। तब तक हुमायूँ अच्छी तरह से यह समझ गया था कि शासन कार्य में अनुशासन का क्या महत्त्व होता है!

हुमायूँ ने ई. सन् १५५५ में लाहौर, आगरा और दिल्ली पर आसानी से अधिकार कर लिया। इस प्रकार हुमायूँ ने फिर से मुगल साम्राज्य स्थापित किया। परंतु वह इस नये राज्य के वैभव का सुख एक साल भी नहीं भोग पाया। अपने महल में स्थित पुस्तकालय में जानेवाली सीढ़ियों पर से फिसल जाने के कारण ई. सन् १५५६ में उसकी मृत्यु हो गई।

दृष्टिदोष

एक गाँव में तीन भाई अगल-बगल के घरों में निवास करते थे। तीनों दृष्टि दोष से पीड़ित थे। नाक के पास ले जाने पर ही कोई चीज़ उन्हें दिखाई देती थी।

तीनों भाई एक दिन शाम को बड़े भाई के घर पर मिलें। उनके बीच दुनियादारी की बातें होने लगीं। बड़े भाई ने छोटे भाइयों से कहा–"इधर कुछ दिनों से मेरी दृष्टि में काफी सुधार हो गया है। दूर पर कोई मच्छर दिखाई देता है तो मैं यह कह सकता हूँ कि वह नर मच्छर है या मादा।"

"भैया, डींग मत मारो। एक हफ़्ते पहले तुम दिन के वक़्त एक बहंगी पर गिर गये थे। क्या वह बात इतनी जल्दी भूल गये?" दूसरे ने टोका।

"अरे दिन की बात छोड़ दो। अंधेरे के बढ़ने के साथ मुझे साफ़ दिखाई देने लगता है। कहते हैं कि कुछ लोग रात के समय अच्छी तरह से देख पाते हैं।" बड़े भाई ने कहा।

"सिर्फ़ अपनी बड़ाई करने से क्या होता है? इसकी परीक्षा लेने पर ही असलियत का पता लग सकता है।" छोटे ने कहा।

"तो परीक्षा कैसे ली जाए?" दूसरे ने पूछा।

"सुनो, मैं उपाय बता देता हूँ। हमारे मकान के सामने जो सराय है, उसके द्वार पर कल सबेरे दाता का एक शिलालेख लगाया जाएगा। उस शिलालेख को पढ़ना ही हम लोगों की परीक्षा है। उस पर अंकित अक्षरों को हम में से जो नजदीक़ से पढ़ेगा, वह हारा माना जाएगा। उसे बाक़ी दोनों को दावत देनी पड़ेगी। यही शर्त होगी।" तीसरे भाई ने कहा।

उस शर्त को दोनों बड़े भाइयों ने मान लिया। छोटे भाइयों के चले जाने के

बाद बड़े भाई के मन में चिंता पैदा हो गई, क्योंकि वह उस शिलालेख को नाक से छूकर ही पढ़ सकता था।

बड़ा भाई देर तक सोचता रहा। आखिर उसे एक उपाय सूझा। सराय के गुमाश्ता से पूछने पर वह बता देगा कि शिलालेख में क्या लिखा है, इस विचार के आते ही बड़ा भाई सराय में पहुँचा।

गुमाश्ता ने पूछा–"मालूम होता है कि आप किसी खास काम से आये हैं।"

"वैसे कोई खास बात नहीं है, सुना है कि कल यहाँ पर एक शिलालेख लगाया जाने वाला है। उस पर क्या-क्या लिखवाया है?" बड़े भाई ने पूछा।

"उस पर सिर्फ़ "श्रीरामचन्द्र की कृपा" लिखवाया गया है।" गुमाश्ता ने जवाब दिया।

बड़ा भाई मन ही मन खुश हुआ और अपने घर की ओर चल पड़ा। सराय के द्वार पर दूसरे भाई से उसकी मुलाक़ात हुई। लेकिन दोनों भाई दृष्टि दोष के शिकार थे, इसलिए एक-दूसरे को पहचान नहीं पाये।

दूसरे भाई के मन में भी बड़े भाई का विचार आया। उसने भी सराय के गुमाश्ता के पास पहुँच कर यही पूछा कि शिलालेख पर क्या क्या बातें लिखाई गई हैं? प्रत्येक व्यक्ति को यही प्रश्न पूछते देख गुमाश्ता आश्चर्य में आ गया। उसने बड़े भाई से जो बात कही थी, वही बात दूसरे को भी कह दी। पर दूसरा भाई उस उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ। उसने फिर पूछा–"शिलालेख किस रंग का है और उस पर किस रंग के अक्षर खुदे हुए हैं?"

"सफ़ेद संगमरमर की शिला पर सोने के रंग के अक्षर खुदवाये गये हैं।" गुमाश्ता ने जवाब दिया।

दूसरे भाई के चले जाने के बाद थोडी देर में छोटा भाई आ पहुँचा। उसने भी वही प्रश्न किया। गुमाश्ता ने उस प्रश्न का वही उत्तर दिया।

छोटे भाई ने फिर पूछा–"श्रीरामचन्द्र की कृपा लेख के नीचे क्या दाता का नाम लिखवाया गया है ?"

"छोटे अक्षरों में 'अमुक आदमी' कह कर दाता का नाम अंकित है। लेकिन शायद तुम फिर यह प्रश्न पूछोगे–उसका रंग क्या है ? उसका लाल रंग है।" गुमश्ता मंदहास करते हुए बोला।

उस दिन रात को तीनों भाई अपने मन में यह विचार करते हुए कि मैं जीत गया हूँ, आराम से सो गये। सवेरा होते ही बड़े भाई के घर दोनों छोटे भाई आ गए। तीनों भाई जल्दी से जल्दी शिलालेख पढ़ने को आतुर थे। इसलिए बिना देरी किये तीनों गली में पहुँचे। बड़ा भाई झट से रुककर बोला–"सराय के और समीप जाने की जरूरत क्या है ? मुझे तो शिलालेख के अक्षर यहीं से दिखाई दे रहे हैं।" उस पर लिखा हुआ है–'श्रीरामचन्द्र की कृपा।'

बड़े भाई की बातें सुनकर दोनों छोटे भाई चकित रह गए। पर दूसरे भाई ने संभाल कर पूछा–"यह बताओ कि शिलालेख किस रंग का है और उस पर किस रंग के अक्षर खुदे हुए हैं ?"

बड़ा भाई विस्मय में आ गया, उसने दूसरे भाई से पूछा–"रंग ? क्या तुमको उस का रंग भी दिखाई दे रहा है ?"

"क्यों नहीं ? सफ़ेद शिला पर सोने के रंग के अक्षर खुदे हुए हैं।" दूसरे ने कहा।

"तुम दोनों लड़ते क्यों हो ? उस शिला पर जो छोटे अक्षर खुदे हुए हैं, उनको भी पढ़ लो। बड़े अक्षर तो अंधा आदमी भी पढ़ सकता है।" तीसरे भाई ने कहा।

"क्या शिला पर छोटे अक्षर भी खुदे हुए हैं ?" दोनों बड़े भाइयों ने पूछा।

"छोटे अक्षर साफ़ जो दिखाई दे रहे हैं। 'श्रीरामचन्द्र की कृपा' के नीचे लाल रंग के अक्षरों में दाता का नाम 'अमुक आदमी' स्पष्ट लिखा हुआ है। तुम दोनों की दृष्टि से मेरी दृष्टि कहीं साफ़ है।" तीसरे ने कहा।

बड़ा भाई दाँव जीतने वाले छोटे भाई के पक्ष में हो जाने के विचार से बोला–"हम तीनों की दृष्टि में तुम्हारी दृष्टि कहीं अच्छी है। इसके बाद मेरा नंबर आता है। बड़े अक्षरों को सब से पहले मैंने ही पढ़ लिया है। तुम दोनों सराय के और समीप जा रहे थे, मैं यहीं पर रुक गया। इसलिए हम दोनों को दूसरा भाई दावत देगा।"

दूसरे भाई ने आपत्ति उठाई–"जो आदमी शिला के और उसके अक्षरों के रंग को नहीं पहचान सकता, उसकी जीत कैसे मानी जा सकती है?"

थोडी देर तक तीनों भाई आपस में झगड़ते रहें; आखिर किसी बुजुर्ग आदमी से इसका फ़ैसला कराने का निश्चय किया गया। इतने में सराय का गुमाश्ता वहाँ पर आ पहुँचा। इस पर बड़े भाई ने उससे पूछा–"महाशय, हम नहीं जानते कि आप कौन हैं? कृपया हमारा फ़ैसला कीजिए। इस सराय के शिलालेख पर 'श्रीरामचन्द्र की कृपा।' लिखा हुआ है या नहीं?"

"लिखा हुआ है।" गुमाश्ता ने उत्तर दिया।

"वह शिला सफ़ेद संगमरमर की है और उस पर सोने के रंग के अक्षर खुदे हुए हैं। यह बात सच है या झूठ?" दूसरे ने पूछा।

"सच है।" गुमाश्ता ने कहा।

"उसके नीचे लाल रंग के छोटे अक्षरों में 'अमुक आदमी' लिखा हुआ है, क्या यह बात सच नहीं है?" छोटे ने पूछा।

"सच है।" गुमाश्ता ने जवाब दिया। इस पर वे तीनों भाई यह कहते हुए झगड़ने लगे कि मेरी ही दृष्टि सब से अच्छी है।

इस पर गुमाश्ता ने उनको रोकते हुए कहा–"मैं यह नहीं कह सकता कि तुम तीनों की दृष्टि किसकी दृष्टि से ज्यादा साफ़ है? लेकिन मेरे विचार में तुम तीनों की दृष्टि एक समान है। क्योंकि सराय के द्वार पर अभी तक शिलालेख बिठाया ही नहीं गया है।" यों कहकर वह अपने रास्ते चला गया।

सामंत राजा

कोसल राज्य के सम्राट राज्यवर्द्धन के अधीन कई सामंत राज्य थे। उनमें विन्ध्याचल के दक्षिण में स्थित रत्नगिरि एक था। उसपर आनंद नाम का एक सामंत राजा राज्य करता था।

आनंद बड़ा ही विचित्र स्वभाव का था। शासन के मामलों में कोई छोटी-सी समस्या भी पैदा हो जाती तो वह जल्दबाजी में कोई निर्णय कर लेता और बाद को मुसीबत में फंस जाता था।

एक बार आनंद के मन में यह विचार आया कि शासन के मामलों में प्रधान मंत्री को सलाह देने के लिए कुछ सलाहकारों को नियुक्त करना उचित होगा। उसने अपने प्रधान मंत्री से यह बात कही। प्रधान मंत्री राजा के स्वभाव से परिचित था, इसलिए उसको राजा के निर्णय को मानना पड़ा।

प्रारंभ में राजा ने प्रधान मंत्री के लिए दो सलाहकार नियुक्त किये, इनकी संख्या एक महीने के अन्दर पंद्रह तक पहुँची। दूसरे महीने में किसी बात की चर्चा के संदर्भ में प्रधान मंत्री ने राजा से कहा– "महाराज, मेरे इतने सलाहकार हो गये हैं कि मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किससे सलाह लूं? साथ ही खजाने का बहुत सा धन इनके वेतन के पीछे खर्च होता जा रहा है!"

दूसरे ही दिन राजा ने सभी सलाहकारों को बुलवा भेजा, उनका ओहदा घटाकर मानद वेतन पर उनको नगर के मुहल्लों के सलाहकार प्रतिनिधियों के रूप में नियुक्त किया। उनका विचार था कि इसके द्वारा नगर की जनता की जरूरतों को शीघ्र समझ कर उनको हल किया जा सकता है।

विमला गर्ग

एक दिन व्यापारियों के मुहल्ले के सलाहकार ने राजा से निवेदन किया–"महाराज, व्यापारियों के मुहल्ले में कोई मंदिर नहीं है, इस वास्ते एक मंदिर उनके लिए बनवाना उचित होगा।" लेकिन मंत्री ने आपत्ति उठाते हुए कहा कि खजाने में धन नहीं है। राजा ने समझाया–"फिलहाल उनको समझा दो कि वे सप्ताह में एक बार राज पथ के मंदिर में पूजा करें। हम पुजारी के पास इस बात की सूचना देंगे कि सप्ताह में एक दिन व्यापारियों के लिए निश्चय किया गया है।"

सप्ताह पूरा होने के पहले सुनार, लुहार, बढ़ई, कुम्हार आदि पेशों के लोगों ने अपने-अपने मुहल्लों में उनके वास्ते अलग मंदिर बनवाने के लिए अपने सलाहकारों के द्वारा राजा से निवेदन करवाया। मंत्री ने सुझाया कि सप्ताह में सात ही दिन हैं, इसलिए इतने सारे पेशेवर लोगों के लिए एक-एक दिन अलग से निर्द्धारित करना संभव नहीं है। लेकिन राजा ने मंत्री को अबोध मानकर गुस्से में कहा–"जनता की इच्छा का तिरस्कार करना राजा के लिए उचित नहीं है।"

मंत्री ने चकित होकर कहा–"महाराज, एक हफ़्ते के सात ही दिन तो होते हैं।"

"यह बात मैं जानता हूँ, पर आज से एक हफ़्ते के दस दिन होंगे।" राजा गंभीर होकर बोले।

"जो आपकी आज्ञा! लेकिन हफ़्ते के सात ही दिनों के नाम हैं, बाक़ी दिनों की बात क्या होगी?"

"यह कोई बडी बात नहीं, एक दिन के लिए सम्राट का, दूसरे दिन के लिए मेरा और तीसरे दिन के लिए तुम्हारा नाम रखेंगे।" राजा ने कहा।

नगर में जल्दी यह ख़बर फैल गई कि आइंदा एक हफ़्ते में दस दिन होंगे। यह ख़बर सुनते ही नगर के धन्ना सेठ वज्रगुप्त राजा के पास आकर बोले–"महाप्रभु, मुझे मालूम हुआ कि धार्मिक कार्यों के

वास्ते खर्च करने के लिए .खजाने में धन नहीं है। मैं आप के हाथ एक लाख स्वर्णमुद्राएँ सौंप दूंगा। बदले में हफ़्ते के ग्यारह दिन बनाकर मेरे नाम पर एक दिन चलाइये।"

राजा प्रसन्न हुए। हफ़्ते के ग्यारह दिन की घोषणा करके उस दिन के लिए वज्रगुप्त का नाम रखा। यह मामला नगर की जनता के लिए कुछ हास्यास्पद सा लगा। पड़ोसी सामंत राजा मौक़ा देखकर रत्नगिरि राज्य को हड़पने का षडयंत्र रचने लगे।

ये सारी बातें सम्राट राज्यवर्द्धन ने अपने गुप्तचरों के द्वारा जान लीं। उन्होंने सोचा कि उनके सामंतों के बीच कलह बढ़ेगा तो वह उनके साम्राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। यह सोच कर उन सबको राजधानी में बुलवा भेजा।

राज्यवर्द्धन ने भरी सभा में रत्नगिरि के राजा आनंद के शासन की प्रशंसा करके बताया—"ऐसे अनुभवी व्यक्ति अगर मेरे सलाहकार बनते हैं तो साम्राज्य का बड़ा ही हित होगा। उनको मैं अपने सलाहकार के रूप में नियुक्त करता हूँ।"

राज्यवर्द्धन की बातें सुनकर राजा आनंद को छोड़ बाक़ी सब लोग आश्चर्य में आ गये। सम्राट ने उसी वक़्त आनंद के पुत्र सत्यदेव को रत्नगिरि का राजा घोषित किया।

सामंत राजाओं के चले जाने के बाद सत्यदेव को बिदा करते समय सम्राट ने कहा—"तुमने समझ लिया होगा कि तुमको क्यों राजा बनाया गया है। तुम्हारे पिता की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। उनकी सलाह से तुम लोगों को बचाने के लिए ही मैंने उनको अपने दरबार में जगह दी है।"

सत्यदेव ने राज्यवर्द्धन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। रत्नगिरि में जाकर अनुभवी मंत्री की सलाह से राज्य की बागडोर संभाली और कुछ ही दिनों में वह एक योग्य शासक के रूप में विख्यात हो गया।

मंदबुद्धि

गणपति का काम नौकर के बिना पलभर भी नहीं चलता। उसका शरीर भारी-भरकम था। हाथ से अगर कोई चीज़ गिर जाती तो उसे उठाने के लिए उसे काफी परेशान होना पड़ता। वह धनी था, इसलिए अपने साथ हमेशा नौकर को रख सकता था। पर धन के समान ही उसका क्रोध भी अधिक था। इस कारण कोई भी नौकर एक महीने से ज्यादा उसके यहाँ टिक नहीं पाता था। एक महीना भी सिर्फ़ तनख्वाह लेने के लिए टिकते थे। पहले महीने के अंत में वेतन मिलते ही काम छोड़ देते थे।

इस कारण गणपति नौकरों से तंग आ गया और उसने यह शर्त रखी कि जो कोई भी उसके यहाँ लगातार छह महीने काम करेगा उसे छह महीने का वेतन एक साथ दिया जाएगा। इसके बाद उसे नौकरों का मिलना और कठिन हो गया। उस हालत में मंदबुद्धि उसके यहाँ नौकरी करने पहुँचा।

मंदबुद्धि का अपना कहनेवाला कोई न था। उसकी खोपड़ी में अक़्ल नाम की कोई चीज़ न थी। वह कभी नाराज़ नहीं होता था। गणपति के मुँह से आदेश निकलने की देर थी कि मंदबुद्धि झट वह काम कर देता। बहुत समय बाद गणपति के मन के अनुरूप नौकर मिल गया था।

एक दिन गणपति अपने कमरे में लेटा हुआ था। उसके मन में यह शंका पैदा हो गई कि शायद दालान में रखा हुआ दीपक बुझाया नहीं गया है। उसने मंदबुद्धि को आदेश दिया कि वह दिया बुझा दे। मंदबुद्धि दालान में पहुँचा। तब तक जो दिया जल रहा था, अचानक

"वसुंधरा"

जोर की हवा चलने से बुझ गया। पर उसके मालिक ने उसे दिया बुझाने का आदेश दिया था, इसलिए उनके आदेश का उसे अक्षरश: पालन करना चाहिए है न? यों सोचकर उसने पड़ोस में जाकर दियासलाई मांगी। पड़ोसी ने मंदबुद्धि से पूछा—"क्या तुम्हारे घर में दियासलाई तक नहीं है?"

"है तो ज़रूर। मगर अंधेरे में वह दिखाई नहीं दे रही है।" मंदबुद्धि ने जवाब दिया।

"हमारे घर में एक हीं दियासलाई है। न मालूम रात के वक़्त हमें भी उसकी ज़रूरत पड़ जाय। चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।" पड़ोसी ने कहा।

मंदबुद्धि ने दिया जलाया, दूसरे ही क्षण उसे बुझाकर दियासलाई पड़ोसी के हाथ देकर बोला—"अब आप जा सकते हैं।"

पड़ोसी ने अचरज में आकर पूछा—"दिया जलाकर झट उसे बुझाना ही था, तो तुमने उसे जलाया ही क्यों?"

"मेरे मालिक ने मुझसे दिया बुझाने को कहा। मेरे बुझाने के पहले ही वह बुझ गया। इसीलिए मैंने फिर से दिया जलाकर उसे बुझा दिया।" मंदबुद्धि ने कहा।

यह उत्तर सुनकर पड़ोसी मन ही मन मुस्कुराया। गणपति के पास जाकर सारा समाचार सुनाया और बोला—"तुम्हारा नौकर हर आदेश का हू-ब-हू पालन करना जानता है, मगर स्वयं सोचने की अक़्ल नहीं रखता। वह वज्रमूर्ख है। उसमें समझदारी नहीं, आज नहीं तो कभी न कभी तुम्हें मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा।" यों समझाकर उसने गणपति को उदाहरण के रूप में पंच तंत्र की दो कहानियाँ सुनाईं।

उन कहानियों को सुनकर गणपति डर गया। लेकिन मंदबुद्धि जैसे नौकर को हटाना उसे पसंद न था। उसने खूब सोच-समझकर दूसरे दिन एक अध्यापक को बुलवा लिया और मंदबुद्धि को पढ़ाने की

जिम्मेदारी उसको सौंप दी। अध्यापक स्वभाव से बड़ा ही अच्छा आदमी था। वह रोज गणपति के घर आकर मंदबुद्धि को पढ़ाने लगा। जिस तरीके से पढ़ाने पर मंदबुद्धि समझ सकता था, उसी तरीके से अध्यापक उसे पढ़ाने लगा। महीने भर में मंदबुद्धि की बुद्धि का विकास होने लगा।

मंदबुद्धि के अन्दर यह परिवर्तन देख अध्यापक बड़ा खुश हुआ। उसने गणपति से कहा–"महाशय, किसीने इस बात की कोशिश नहीं की कि मंदबुद्धि को किस तरीके से पढ़ाने पर वह समझ सकता है। यह तो बड़ा ही तेज और समझदार है!"

गणपति ने मंदबुद्धि की समझदारी की परीक्षा ली और उसके भीतर परिवर्तन पाया। इसके बाद अध्यापक को बढ़िया पुरस्कार देकर विदा किया।

दूसरे दिन से मंदबुद्धि ने गणपति के आदेश का आँख मूँदकर पालन करना छोड़ दिया। हर काम के भले-बुरे की बात सोच कर वह गणपति को समझाने लगा कि अमुक काम करने से हमारा अहित होगा और अमुक काम करने पर हमारा भला होगा।

गणपति की हालत फिर पहले की सी हो गई। वह क्रोध में आकर बोला–"तुम छोटी-छोटी बातों में अपनी समझदारी का परिचय दो, तो मैं मना नहीं करूँगा। लेकिन बाक़ी मामलों में तुमको मेरे आदेशों का पालन करना होगा।"
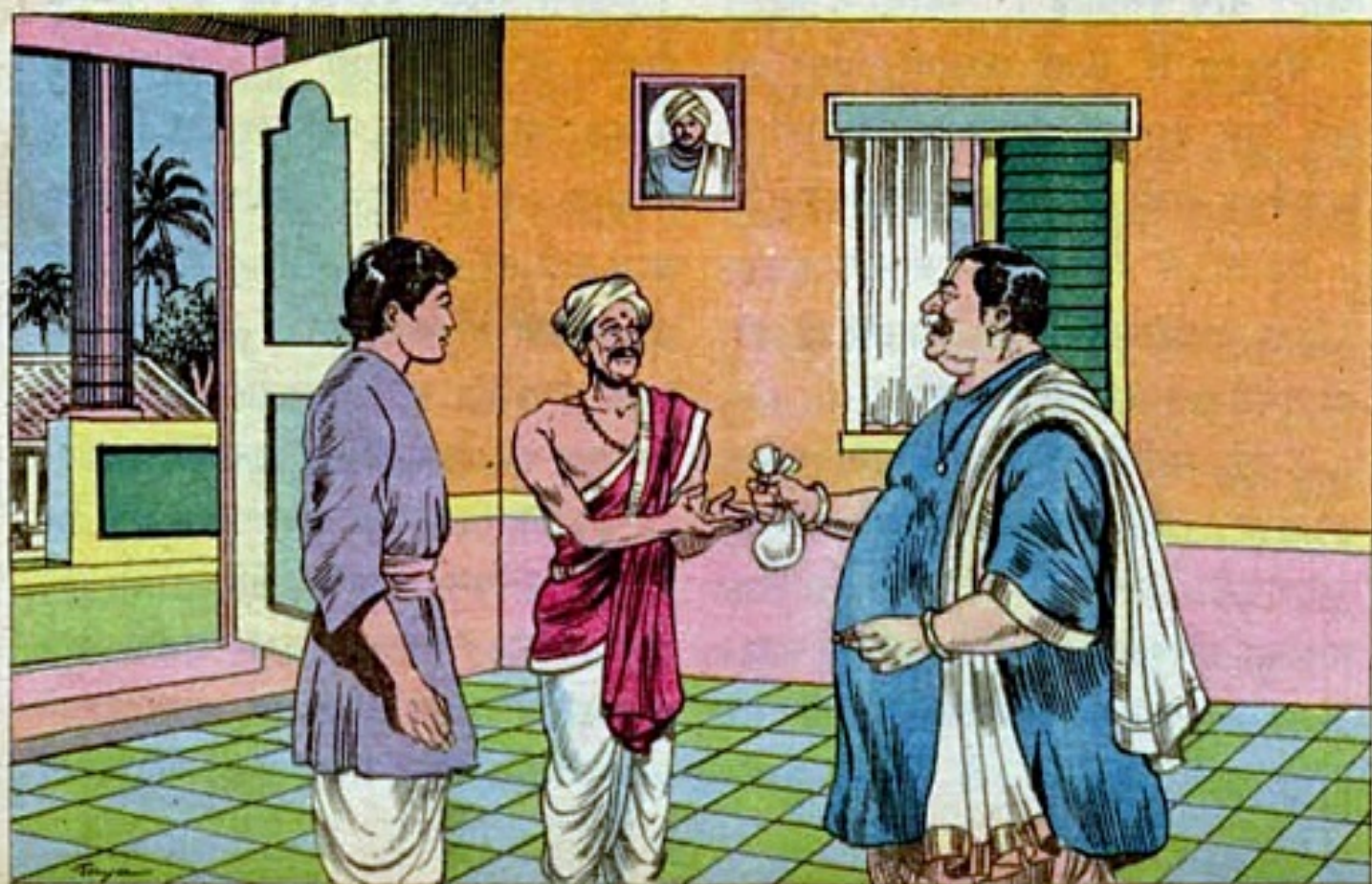
"आप यह क्या कह रहे हैं? आपको गलती करते देख मैं चुप नहीं रह सकता। मैं डंके की चोट कहूँगा कि आपका अमुक कार्य गलत है। इससे आप ही का भला होगा।" मंदबुद्धि ने कहा।

इस पर गणपति गरज कर बोला– "तुमको मैंने नौकरी से हटा दिया है। इसी क्षण यहाँ से चले जाओ।"

"मुझे तो आप के यहाँ नौकरी करने में ही अच्छा लगता है। मैं कहाँ जाऊँगा?" मंदबुद्धि ने हठ किया।

इसके बाद दोनों ने न्यायाधिकारी के पास जाकर अपनी-अपनी फ़रियाद पेश की।

न्यायाधिकारी ने मंदबुद्धि से कहा– "मंदबुद्धि, गणपति ने तुम्हारा भला किया है। अपना धन खर्च करके तुमको समझदार बनाया है। तुम्हें उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।"

"हुजूर, यह बात सच है कि मेरे मालिक ने अपना धन खर्च करके मुझको विवेकशील बनाया है, लेकिन इससे मेरा फ़ायदा ही क्या हुआ? मेरी समझदारी उनके लिए किसी काम की नहीं रही, उल्टे मुझे नौकरी से हाथ धोना पड़ रहा है। अब मुझे कौन नौकरी देगा?" मंदबुद्धि ने कहा।

"तुम गणपति के आदेश का पालन करते तो वे तुमको नौकरी से क्यों हटाते?" न्यायाधिकारी ने कहा। "हुजूर, कोई भी समझदार आदमी उनकी बात नहीं मान
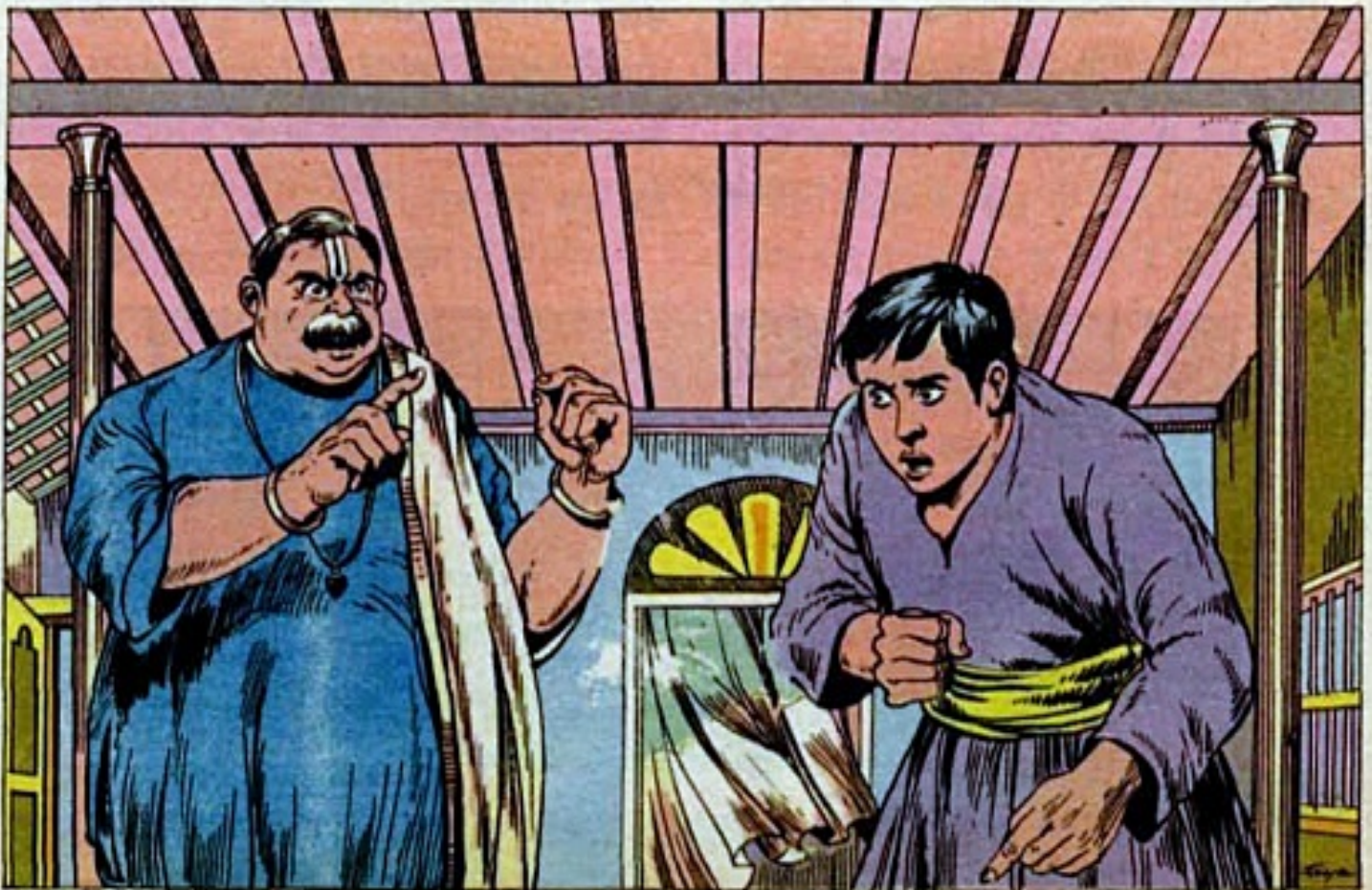
सकता। यदि मुझे अक्षरशः उनके आदेश का पालन करना है, तो आप कृपया उनसे बता दीजिए कि वे फिर से मुझको मंदबुद्धिवाला बना दे।" मंदबुद्धि ने कहा।

गणपति क्रोध में आकर बोला–"अब मैं तुमको समझदार बनानेवाले अध्यापक को बुलवाकर उनसे कहूँगा कि वे फिर से तुमको मंदबुद्धि के रूप में बदल दें।"

"हुज़ूर, आप मेरे मालिक की बातें सुन रहे हैं न? अध्यापक ने मुझे जो शिक्षा दी, उसको वे कैसे वापस ले सकते हैं!" मंदबुद्धि बोला।

न्यायाधिकारी ने समझाया–"गणपति, तुम्हारा नौकर काम-काज करने के लिए ही नहीं, तुम्हें सलाह देने के लिए भी ज़रूरी है। उसको तुम नौकरी से नहीं हटा सकते। यदि हटाना चाहोगे तो उसे तुम्हें और कहीं नौकरी दिलानी पड़ेगी।"

ये बातें सुनकर गणपति घबराकर इधर-उधर ताकने लगा। इस पर न्यायाधिकारी मुस्कुराकर बोला–"गणपति, घबराओ मत! यह तो स्वभाव से समझदार और विनयशील है। इसको मैंने ही तुम्हारे पास भेजा था और समझाया था कि मंदबुद्धिवाले का सा अभिनय करे। तुम तो गाँव भर में बड़े आसामी हो। तुम्हारे सारे गुण तारीफ़ के लायक़ हैं। अगर तुम्हारे अन्दर कोई कमी है तो वह यह कि तुम हद से ज़्यादा क्रोधी हो। तुम्हें नौकरों के मामले में परेशान होता देख एक अच्छे नौकर दिलाने की जिम्मेदारी मैंने अपने ऊपर ले ली थी।"

"यह बात आपने पहले ही क्यों नहीं बताई?" यों कहकर मंदबुद्धि की ओर मुड़कर गणपति बोला–"अरे, तुमने मंदबुद्धि व्यक्ति का सा कैसा अच्छा अभिनय किया है? जो हुआ सो हुआ। पर मेरे जैसा मालिक तुमको और तुम्हारे जैसा नौकर मुझको प्राप्त हो जाना दोनों के लिए ही किस्मत की बात है। चलो, अब हम घर चले!"

विष्णु पुराण

भगवान विष्णु ने जय और विजय से कहा- "महा मुनियों का शाप झूठा साबित नहीं हो सकता। तुम दोनों मेरे प्रति मैत्री भाव रखते हुए सात जन्मों में तर जाना चाहते हो या मेरे साथ द्वेष करते हुए शत्रु बनकर तीन जन्मों तक मेरे हाथों मृत्यु को पाकर यहाँ पर आना चाहते हो ?"

इस पर जय और विजय ने तीन ही जन्मों में विष्णु के सान्निध्य को पाने का वरदान माँग लिया।

जय-विजय की कामना की प्रशंसा करते हुए सनकादि मुनियों ने विष्णु से कहा- "भगवान, हमने यह रहस्य अभी जान लिया कि आप की दृष्टि में राग-द्वेष दोनों बराबर हैं और जो लोग आप से द्वेष करते हैं वे आपके और निकट के हो जाते हैं। आपके द्वारपालों को जल्दबाजी में हमने शाप दिया, हम अपनी करनी पर पछता रहे हैं ! कृपया हमें क्षमा कीजिए।" इसके बाद वे लक्ष्मी नारायण की स्तुति करते हुए वहाँ से चले गये।

इसके बाद जय और विजय कश्यप प्रजापति की पत्नी दिति के गर्भ में हिरण्य कश्यप और हिरण्याक्ष के रूप में पैदा हुए।

वे दोनों भाई बड़े पराक्रमी बन गये। घोर तपस्या करके ब्रह्मा को प्रसन्न कर उन से वरदान प्राप्त किये और विष्णु के प्रति द्वेष करने लगे।

हिरण्य कश्यप ने राक्षसों का राजा बनकर विष्णु का सामना करने का निश्चय किया।

हिमण्याक्ष ने विष्णु को कुपित करने

केलिए अनेक अत्याचार किये और पृथ्वी को लुढ़काते-लुढ़काते रसातल समुद्र में ढ़केल दिया। पृथ्वी रसातल समुद्र में डूब गई। भूदेवी ने विष्णु की स्मृति करके अपना उद्धार करने की प्रार्थना की।

विष्णु ने भूदेवी पर अनुग्रह करके दशापवतारों में से तीसरा वराहावतार लिया।

ब्रह्मा के होम करते समय यज्ञ कुंड से शुभ्र कांति-मंडित एक कण निकल आया और बढते-बढते उसने जंगली सुअर का रूप धारण कर लिया। उस सुअर को विष्णु का अवतार मानकर ब्रह्मा आदि देवताओं ने यज्ञ वराह, श्वेत वराह और आदि वराह के रूप में उनकी स्तुति की।

यज्ञ वराह ने बढते-बढते विशाल रूप धारण कर लिया। उसके बलिष्ठ पैर थे, उसका चर्म इस्पात जैसा कठोर था, वज्र जैसे उसके तेज जबड़े थे, उसकी आँखों से अरुण कांति प्रसारित हो रही थी। उसके रोए स्वर्ण जैसे चमक रहे थे ! वह सारे विश्व को गुँजाते हुए हुँकार कर उठा। उस यज्ञ वराह के माथे पर खड्ग जैसा सींग धक् धक् दमक रहा था।

वराहावतार तेज गति से रसातल की ओर दौड़ पड़ा। उसकी गति से उत्पन्न कंमन से सारी दिशाएँ हिल उठीं। प्रलय कालीन आंधी चलने लगी।

यज्ञ वराह ने रसातल समुद्र के भीतर घुस कर उसके नीचे डूबी हुई पृथ्वी को अपने सींग से ऊपर उठाया।

उसी समय हिरण्याक्ष ने वरुण पर हमला करके युद्ध केलिए उसको ललकारा।

वरुण ने कहा- "तुमको तो मेरें साथ युद्ध करना नहीं है, तुम तो महान वीर हो। इसलिए तुम्हें पृथ्वी को ऊपर उठाने वाले परम शक्तिशाली यज्ञ वराह के साथ युद्ध करना होगा।"

इसपर हिरण्याक्ष तत्काल यज्ञ वराह से जूझ पड़ा।

वराह रूपधारी विष्णु के साथ हिरण्याक्ष

पराक्रम-पूर्वक लड़ते हुए विष्णु के गदा को उडा कर ताल ठोकता हुआ खड़ा हो गया। विष्णु ने उसके युद्ध-कौशल की प्रशंसा की, उन्हों ने फिर से गदा को अपने हाथ में धारण किया। इसके बाद उन दोनों के बीच भयंकर संग्राम छिड़ गया। अंत में वराहावतार ने अपने सींग के वार से हिरण्याक्ष को मार डाला।

वराहावतार रूपधारी विष्णु को भूदेवी ने वर लिया। वराहमूर्ति ने भूदेवी को उठा कर अपनी जांघ पर बिठा लिया। ब्रह्मा आदि देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की और जगपति के रूप में अनेक प्रकार से उन की स्तुति की।

वराहवतार लेकर अपने छोटे भाई का वध करने वाले विष्णु से बदला लेने के संकल्प से हिरण्य कश्यप ने ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करना चाहा। इस विचार से वह ब्रह्मा को प्रसन्न करने केलिए तपस्या करने चला गया। उस समय उस की पत्नी लीलावती गर्भवती थी।

लीलावती के गर्भ को विच्छिन्न करने केलिए इन्द्र ने मायाजाल रचा और उस को बन्दी बनाकर आकाश मार्ग में ले जाने लगे, उस वक्त नारद उन से मिल कर बोले- "इन्द्र! आप कैसा अन्याय करने जा रहे हैं। आप अपने प्रयत्न को छोड दीजिए! सदा सर्वदा हिरण्य कश्यप ईर्ष्यावश विष्णु का स्मरण किया करता है, इस कारण लीलावती के गर्भ में बढ़नेवेले शिशु को विष्णु का स्मरण करने की आदत पड़ गई है। विष्णु के प्रति हिरण्य का द्वेष उस शिशु के अन्दर भक्ति के रूप में परिणत हो गया है। लीलावती महान विष्णु भक्त का जन्म देने वाली है। इसलिए आप लीलावती को मुक्त करके अपने धाम को चले जाइये।" यों समझा कर नारद लीलावती को अपने आश्रम में ले आये।

आश्रम में नारद दार्शनिक बातों के साथ-साथ विष्णु के गुणों का भी वर्णन करते जाते थे। उस समय लीलावती के गर्भ में स्थित शिशु बडे ध्यान से सुना करता था। कालांतर

में लीलावती ने एक पुत्र को जन्म दिया।

हिरण्य कश्यप ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा ने उसे वर मांगने को कहा। इस पर उसने ऐसे अनेक वर मांगे, जिनके कारण उसकी मृत्यु पृथ्वी या आकाश, दिन और रात, घर या बाहर, पशु या मानव, देवता या किसी अन्य प्राणी के द्वारा न हो। साथ ही सृष्टि के किसी जीवधारी के द्वारा भी उसकी मृत्यु न हो! ऐसे अनेक वर उसने ब्रह्मा से प्राप्त किये। ब्रह्मा ने उसको सभी वर दे दिये।

ब्रह्मा से वर पाकर हिरण्य कश्यप जब विजय-गर्व से लौट रहा था, तो रास्ते में नारद के मुँह से सारा वृत्तांत सुनकर उनके आश्रम में पहुँचा और अपने पुत्र का नाम प्रह्लाद रखा। इसके बाद अपनी पत्नी और पुत्र को लेकर राजधानी में पहुँचा।

हिरण्य कश्यप ने सब से पहले इन्द्र से बदला लेना चाहा। उसने स्वर्ग पर हमला करके इन्द्र के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। सारी दिशाओं पर विजय प्राप्त करके दिकपालों को अपने अधीन कर लिया। देवताओं को खूब सताया। जब शचीदेवी का अपमान करना चाहा, लीलावती ने उसको रोका। फिरभी उसका क्रोध जब शांत न हुआ तो उसने मुनियों के आश्रमों को जला दिया। विष्णु के भक्तों पर अत्याचार करना प्रारंभ किया। अंत में विष्णु का सामना करना ही अपना लक्ष्य मान कर उनको भड़काने की कोशिश करने लगा। फिर भी विष्णु से वहीं उसकी मुलाकात न हुई। अंत में वह वैकुण्ठ पर चढ़ाई कर बैठा। वहाँ पर भी विष्णु उसे दिखाई नहीं दिये।

"मुझ से डर कर विष्णु कहीं अदृश्य रूप में छिपे हुए हैं। कायर कहीं के!" ऐसा कहते हुए हिरण्य कश्यप अपनी राजधानी को लौट आया।

प्रह्लाद- उम्र के बढ़ने के साथ विष्णु का ध्यान करने लगा। हिरण्य कश्यप यह सोच कर चिंता में डूब गया कि ऐसा वंशद्रोही उसके

यहाँ कैसे पैदा हो गया । प्रह्लाद का विद्याभ्यास कराने केलिए हिरण्य कश्यप ने उसको अपने गुरुपुत्र चण्ड और मार्क के हाथ सौप दिया ।

प्रह्लाद ने गुरु कुल में हरि का ध्यान करते हुए अपनी विद्या समाप्त की । अपने सहपाठियों में भी विष्णु भक्ति का प्रचार करके उनके मन में मुक्ति मार्ग के प्रति अभिरुचि पैदा की ।

विद्या की समाप्ति पर चण्ड और मार्क प्रह्लाद को हिरण्य कश्यप के हाथ सौंपने के लिए आए । हिरण्य कश्यप ने अपने पुत्र को प्रेम से जांघ पर बिठाया और पूछा- "बेटा, तुम अपनी विद्या का परिचय कराने वाला एक पद्य सुनाओ !"

प्रह्लाद ने अपने मधुर कंठ से एक पद्य गाकर सुनाया, जिसका अर्थ था- "मैं ने अपने गुरुजी से सारी विद्याएँ पूर्ण रूप से सीख ली हैं ! उन सभी विद्याओं में श्रेष्ठ विद्या विष्णु के प्रति चित्त लगाना है । विष्णु का स्मरण करने से प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सार्थक हो जाता है ।"

प्रह्लाद के मुँह से ये बातें सुनकर हिरण्य कश्यप क्रोध से कांप उठा और उसको अपनी जांघ पर से नीचे ढकेल दिया, तब गुरुओं से गरज कर पूछा- "क्या आप ने हमारे पुत्र को यही शिक्षा दी है ?"

चण्ड और मार्क दोनों थर-थर कांपते हुए बोले- "राजन, इसमें हमारा कोई दोष नहीं है ! आप कृपया हम पर नाराज़ न होइए ।" ऐसा कहते हुए गुरुकुल में प्रह्लाद के व्यवहार का पूरा परिचय दिया ।

हिरण्य कश्यप ने अपने पुत्र को समझाया- "विष्णु ने सुअर का रूप धर कर तुम्हारे चाचा जी का संहार किया है । वह हमारे राक्षस कुल का परम शत्रु है ! विष्णु का स्मरण करना हमारे वंश का अपमान करना है ! वह अक्षम्य अपराध है । तुम उसका स्मरण करना छोड़ दो ।"

में आकर गरजते हुए बोला- "तब तो तुम्हारी मौत निश्चित है। तुम अन्न-जल के विना मर जाओ !"

इसके बाद प्रह्लाद को कारागार में ढकेल दिया। पुत्र-प्रेम के कारण लीलावती तड़प उठी।

दिन बीतते गये। लीलावती के दुख को देख हिरण्य कश्यप ने प्रह्लाद को कारागार से मुक्त किया। विष्णु का ध्यान करते तन्मयावस्था में अत्यंत शोभायमान पुत्र को देख हिरण्य कश्यप यह सोचकर आश्चर्य में आ गया कि कई दिनों से अन्न-ज़ल के विना यह कैसे जीवित है ? फिर गुस्से में आकर उस बालक को हाथियों के पैरों तले डाल दिया।

हाथी प्रह्लाद को देख इस तरह घबरा उठे, मानो सिंह को देख लिया हो। महावतों ने अंकुश चलाकर बालक पर हाथियों को चलवाने का प्रयत्न किया। मगर बालक का बाल बांका न हो सका।

सांपों से डसवाने का प्रयत्न किया गया पर सांप उस बालक को प्यार से चूम कर फन फैलाकर नाच उठे।

इसके बाद प्रह्लाद को पहाड़ की चोटी पर से नीचे ढकेलवा दिया गया। फिर समुद्र में फिकवाया गया, कालकूट विष पिलवाया, फिर भी प्रह्लाद को जीवित देख हिरण्य कश्यप ने

प्रह्लाद ने शांत स्वर में कहा- "पिताजी, आप दानवों के राजा हैं। मुझको शाप देने में भी आप को संकोच नहीं करना चाहिए, लेकिन मैं क्या करूँ ! जैसे लोहे का टुकड़ा चुंबक की ओर आकृष्ट हो जाता है, वैसे ही मेरा मन भी विष्णु की ओर खिंचा हुआ है। जैसे भ्रमर कमल को भूल नहीं सकता है, वैसे मैं भी विष्णु को भूल नहीं सकता। यह मेरे वश की बात नहीं है। मेरे शरीर में प्राण के रहते उनको भूल जाना असंभव है। मेरी आत्मा ही विष्णु स्वरूप है।"

छोटे बालक के मुँह से ऐसी बातें सुन कर हिरण्य कश्यप विस्मय में आ गया। फिर क्रोध
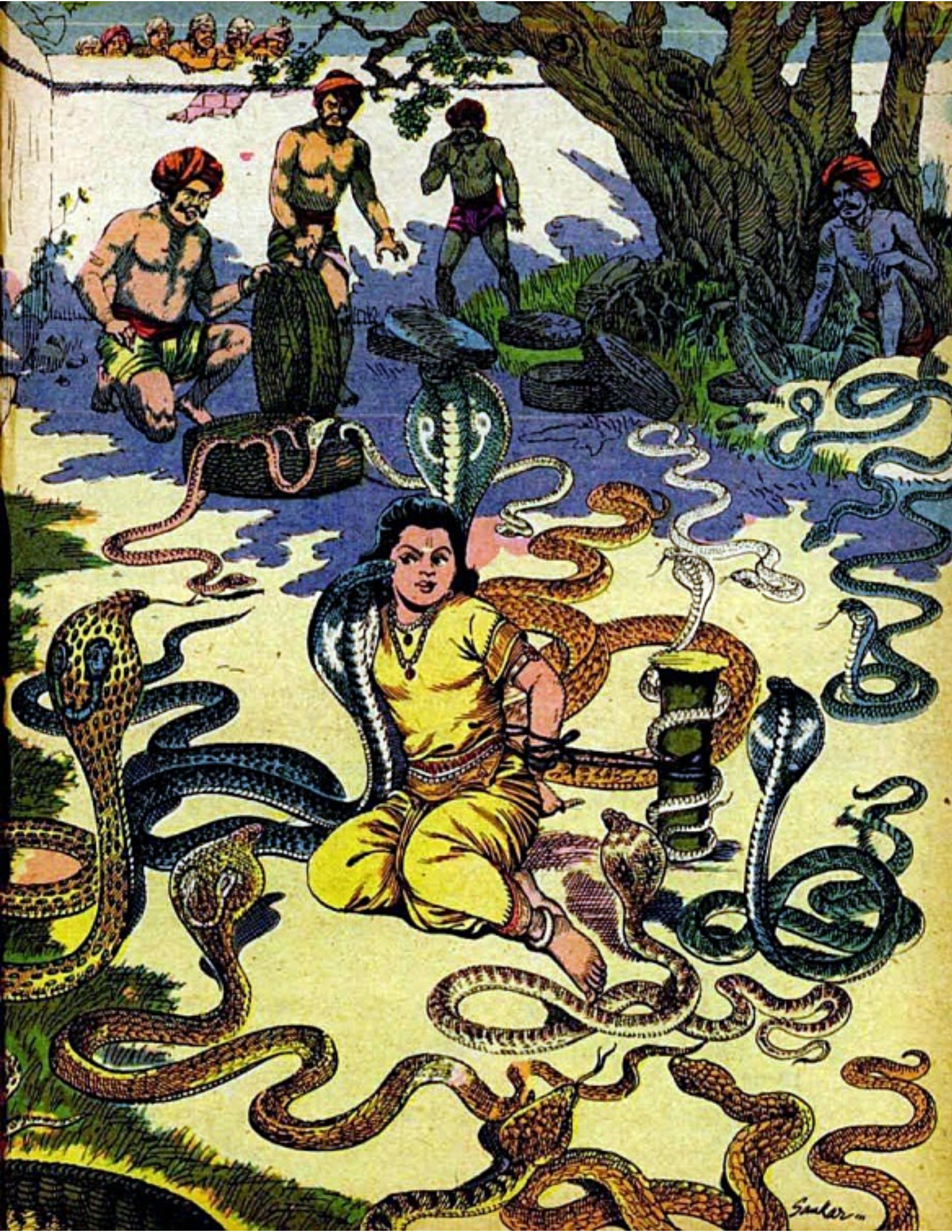
उससे पूछा- "तुम क्यों नहीं मरते ? इसके पीछे क्या रहस्य है ?"

प्रह्लाद ने हंसकर उत्तर दिया- "इस में कोई रहस्य की बात नहीं है ! हाथियों में, सांपों में, यहाँ तक कि पत्थर अग्नि, समुद्र, जहर आदि में ही नहीं, बल्कि आप में और मेरे भीतर भी विष्णु ही विद्यमान हैं ! इस सत्य को आप नहीं समझ पा रहे हैं ! मुझको मारने के प्रयत्न और मेरा जीवित रहना-यह सब उनकी लीलाओं का महात्म्य है, पिताजी ।"

प्रह्लाद की बातों से हिरण्य कश्यप का क्रोध भडक उठा । वह उस बालक की बाँह पकड कर सभा भवन के बीच खींच ले गया और अपना गदा हाथ में ले लिया । उस दृश्य को देख लीलावती बेहोश हो गई । चारों तरफ़ घिरे हुए राक्षस प्रमुख चकित हो मूर्तिवत खड़े ही रह गये ।

सभा मण्डप के सामने लोहे से निर्मित एक विजय स्तम्भ खड़ा था । हिरण्य कश्यप ने वह स्तम्भ दिखा कर प्रह्लाद से पूछा- "अरे कुलद्रोही ! वह मेरा विजयस्तम्भ है ! मेरे छोटे भाई का वध करनेवाले विष्णु के साथ युद्ध करके तुम्हारी आँखों के सामने उसका संहार करूँगा और इस प्रकार मैं बदला लूँगा । क्या तुम्हारा विष्णु उस स्तम्भ के अन्दर है ?"

"आप को संदेह करने की कोई ज़रूरत नहीं है । वे सर्वत्र विद्यमान हैं और उसके अन्दर भी हैं ।" प्रह्लाद ने झट जवाब दिया ।

हिरण्य कश्यप ने तेज गति से जाकर उस स्तभ पर गदा से प्रहार किया । प्रलय ध्वनि के साथ पृथ्वी और आकाश गूँज उठे । धुएँ के बादल चारों तरफ़ फैल गये । स्तम्भ दो टुकड़ों में फट गया । उसके भीतर से चकाचौंध करते हुए दशावतारों में से चौथा नृसिंह अवतार धारण कर विष्णु प्रकट हुए । सिंह का सर, मानव का धड़, हाथों में सिंह के नाखून ऐसा अपूर्व रूप को लेकर नरसिंह प्रलयंकर ध्वनि के साथ गरज उठा । उस वक्त ऐसा लगा मानो पांचजन्य फूंक दिया हो । सुदर्शन चक्र उनके चतुर्दिक घूमते हुए दिखाई दिया ।

चतुर चोर

रुमेनिया की राजधानी में एक चतुर चोर रहा करता था। एक दिन वह किसी गाँव की ओर जा रहा था, रास्ते में एक दूसरे चोर से उसकी मुलाक़ात हुई। देहात का वह चोर शहर में चोरी करने के विचार से जा रहा था। दोनों की परस्पर बातचीत से यह बात स्पष्ट हो गई कि दोनों का पेशा एक है।

शहर का चोर देहात के चोर से बोला–"तुम्हारा कौशल देखना चाहता हूँ, जाओ, सामने वाले पेड़ पर कौए का जो घोंसला है, उसमें से कौए की आँख बचा कर उसके अण्डे चुरा लाओ।"

देहात का चोर पेड़ पर चढ़ गया। अण्डे वाले कौए की आँख बचाकर उसने अण्डे चुरा लिये और जेब में डाल कर पेड़ से उतर आया। लेकिन नीचे आने पर देखता क्या है कि उसकी जेब से अण्डे गायब हैं। शहर के चोर ने अपने हाथ में उन अण्डों को दिखा कर कहा–"कोई बात नहीं, तुम एक चतुर चोर हो। तुम चोरी करने में मेरा हाथ बटाओगे तो मैं तुम्हें चोरी के माल में हिस्सा दूंगा।"

देहात के चोर ने उसकी बात मान ली।

दोनों ने उस रात राजा के खजाने को लूटने का निश्चय किया।

सूर्यास्त के होते ही वे दोनों राज महल की छत पर चढ़ गये और छत पर की शीशे की खिड़कियों से प्रत्येक कमरे को देखते गये और अंत में खजाने के पास पहुँच गये। उसमें सोने की मोहरों से भरे पीपे रखे थे।

शहर के चोर ने देहात के चोर को रस्से की मदद से शीशे की खिड़की से होकर खजाने वाली कोठरी में उतार दिया। देहात का चोर एक थैली में सोने की मुद्राएँ भर कर छत पर लौट आया।

रुमेनिया की लोक कथा

दूसरे दिन राजा रोज की भांति खजाने का निरीक्षण करने आये और पहरेदारों से पूछा–"कोठरी में कौन आया था?"

"कोई नहीं आया, महाराज।" पहरेदार ने जवाब दिया। राजा सीधे कारागृह में चले गये। वहाँ पर बंदी बनाये गये एक बूढ़े चोर से पूछा–"कोई खजाने में पहुँच कर दो हजार से ज्यादा सोने की मुद्राएँ चुरा ले गया है, लेकिन दीवारों में कहीं सेंध नहीं है। यह कैसे हुआ?"

"सेंध जरूर होगी, महाराज! मगर आप इसका पता नहीं लगा पाये होंगे। आप एक काम कीजिए, खजाने वाली कोठरी में धुआं कीजिए, तब देखिए कि कहाँ से धुआँ बाहर निकलता है। तब आप को आसानी से सेंध का पता लग जाएगा।" बूढ़े चोर ने उपाय बताया।

राजा ने बूढ़े चोर के सुझाव पर अमल किया। छत की शीशेवाली खिड़की में से धुआं निकल आया। राजा ने बूढ़े चोर को यह समाचार सुनाया। इस पर बूढ़े चोर ने सलाह दी–"महाराज, वह चोर फिर से चोरी करने आएगा। आप शीशे की मरम्मत न कराइयेगा। साथ ही खिड़की के नीचे वाले पीपे में गुड़ की चाशनी भरवा कर रख दीजिए। चोर उसके अन्दर फंस कर पकड़ा जाएगा।"

बूढ़े चोर की बात सच निकली। दोनों चोरों ने आपस में चर्चा करके यह निर्णय किया कि राजा को चोरी का पता लगने से पहले ही खजाने की बहुत सारी मुद्राओं को हम चुरा सकते हैं।" यों सोच कर दूसरी रात को वे दोनों फिर चोरी करने आये।

देहाती चोर रस्से की मदद से खजाने में उतरा और गुड़ की चाशनी में फंस गया।

"भैया, हम धोखा खा गये। मैं पीपे के अन्दर फंस गया हूँ, तुम मुझ को ऊपर खींच नहीं सकते। मैं जिन्दा ही न पकड़ लिया जाऊँ, इस वास्ते तुम मुझे जहर देकर यहां से भाग जाओ।" देहाती चोर बोला।

"भाई, तुम मत डरो। मेरे पास एक ऐसी दवा है जिसे खाने पर तुम मुर्दा नज़र आओगे। तुम यह दवा खा लो। मैं वक़्त पर आकर तुमको बचाऊँगा।" शहर का चोर बोला। इसके बाद वह रस्से की मदद से खजाने के अन्दर उतर कर देहाती चोर को कोई दवा देकर चला गया।

दूसरे दिन सवेरे राजा खजाने के अंदर आये और पीपे में फंसे हुए चोर को देख बोले-"ओह, चोर हाथ लग गया है, अरे बदमाश, अभी तेरी मैं खबर लेता हूँ।"

मगर चोर को मरा हुआ पाकर राजा का उत्साह ठण्डा पड़ गया। उन्होंने कारागार के बूढ़े चोर को सारा समाचार सुनाया।

"महाराज, ये लोग बड़े ही चतुर चोर मालूम होते हैं।" बूढ़े चोर ने कहा।

"क्या इसके अलावा कोई दूसरा चोर भी है?" राजा ने विस्मय में आकर पूछा।

"अगर दूसरा चोर न होता तो यह कैसे मरता? यह तो आत्महत्या नहीं कर सकता है न? गुड़ की चाशनी में फंस जाने से किसी की जान तो चली नहीं जाती। फिर भी उस दूसरे चोर को भी पकड़ने का उपाय है। इसकी लाश ले जाने के लिए दूसरा चोर जरूर आएगा। आप नगर के द्वार पर एक कुर्सी पर इसकी लाश रख कर पहरेदारों को नियुक्त कीजिए।" बूढ़े चोर ने सुझाव दिया।

बूढ़े चोर के कथनानुसार शहर के चोर ने अपने मित्र को बचाने के प्रयत्न शुरू किये। उसने एक सफ़ेद घोड़ा, एक गाड़ी और चार झारियां शराब खरीद ली। बूढ़े का वेष धरकर नगर द्वार के पचास गज की दूरी पर अपनी गाड़ी को एक ओर लुढ़का दिया और चिल्लाने लगा-"ओह, मेरी गाड़ी लुढ़क गई है, शराब की झारियां भी गिर गई हैं, मेरी मदद कीजिए।"

देहाती चोर का पहरा देने वाले सिपाहियों ने कहा-"अबे बूढ़े, हम को शराब की एक झारी दोगे तो हम तुम्हारी मदद करेंगे।"

"हुजूर, मैं कब इनकार करता हूँ? एक झारी जरूर दूंगा। शहर का चोर बोला। सिपाहियों ने गाड़ी को ठीक से खड़ा कर दिया। शराब की एक झारी ले जाकर बारी-बारी से पीने लगे। उन्हें पता न था कि चोर ने उस शराब में नींद की नशीली दवा मिला दी है। जब सिपाही नींद के नशे में ऊँघने लगे, तब शहर के चोर ने देहात के चोर को दिखा कर पूछा— "सरदारजी, यह कौन है?"

"वह तो एक चोर है।" सरदार ने उत्तर दिया।

"ओह, कहीं यह मेरे घोड़े को चुरा कर न ले जाए।" शहर के चोर ने कहा।

"अरे बूढ़े, क्या तेरा दिमाग खराब हो गया है? देखता नहीं? यह तो मरा हुआ है।" सरदार ने कहा।

"यह जरूर मेरे घोड़े को चुरा ले जाएगा। चोरों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।" शहर के चोर ने आशंका प्रकट की।

"अरे बूढ़े, बकवास बंद कर। अगर चोर तुम्हारा घोड़ा चुरा लेगा तो, मैं तुम्हारे घोड़े के दाम भर दूंगा, समझें।" सरदार बोला।

इसके बाद एक-एक करके सभी सिपाही निद्रा में डूब गये। मौक़ा पाकर शहर के चोर ने देहाती चोर के समीप जाकर उसके मुंह में कोई दवा डाल दी। थोड़ी देर में देहाती चोर हिला और उसने आँखें खोल दीं।

"देखो भाई, ये लोग ज्यादा देर नशे में न होंगे। तुम घोड़े पर सवार होकर घर चले जाओ। सवेरे आकर मैं तुम से मिलूंगा।" शहर के चोर ने समझाया।

देहाती चोर के जाते ही शहर का चोर यथा स्थान पहुँच कर सो जाने का अभिनय करने लगा।

थोड़ी देर बाद सिपाही होश में आ गये। मृत चोर के साथ घोड़े को गायब देख वे लोग चौंक उठे। सरदार आँखें मलते हुए बोला—"बूढ़े की बात सच निकली।"

सरदार उठ खड़ा हुआ। शहर के चोर को जगा कर बोला–"न मालूम तुम्हारे मुँह से ये बातें कैसे निकलीं। चोर गायब है और घोड़ा भी। राजा को यहाँ का समाचार मालूम हो जाएगा, तो हमारी चमड़ी उधेड़ देंगे। मैं तुम्हारे घोड़े का दुगुना मूल्य दूंगा। तुम कृपा करके राजा को यहाँ का समाचार मत सुनाओ।"

शहर का चोर अपना काम पूरा करने के साथ पाँच सौ मुद्राएँ भी कमा कर वहाँ से चंपत हो गया।

राजा के मुंह से सारा वृत्तांत सुनकर बूढ़ा चोर बोला–"महाराज, मैंने पहले ही बताया था कि वह एक चतुर चोर है। अब भारी पुरस्कार की घोषणा करने पर ही वह आप के सामने हाजिर हो सकता है।"

राजा के मन में बूढ़े चोर की बुद्धिमानी के प्रति आदर पैदा हुआ। उन्होंने बूढ़े चोर की सलाह के अनुसार चोर को पकड़ा देने वाले के लिए भारी इनाम की घोषणा करवाई।

शहर का चोर राजा के सम्मुख हाजिर होकर बोला–"महाराज, खजाने को लूटने वाला चोर मैं ही हूँ। भारी इनाम पाने के लिए आया हूँ।"

"इस बात का क्या सबूत है कि तुम्हीं चोर हो?" राजा ने पूछा।

इस पर चोर दूर पर एक बैल को हांक कर ले जाने वाले को दिखा कर बोला–"महाराज, इस के सबूत के लिए मैं उस बैल को चुरा सकता हूँ।" उस बैल को हांक ले जाने वाला देहाती चोर था।

"तुम उस बैल को चुरा ले आओगे तो मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करूँगा।" राजा ने कहा। शहर के चोर ने बैल को हांकने वाले चोर के कान में कुछ कहा। बैल को हांकने वाला सर पीटते हुए वहाँ से भाग गया। इस पर राजा बहुत प्रसन्न हुए।

राजा ने उसे भारी इनाम देकर विदा किया। उस इनाम को दोनों चोरों ने बराबर बांट लिया और अपना शेष जीवन सुखपूर्वक बिताया।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ अगस्त १९८३ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

Chandrapal Singh

★

Chandrapal Singh

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ जून १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें : चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अप्रैल के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : प्रतियोगिता में आ गये प्रथम!

द्वितीय फोटो : सोचते-सोचते रुक गये क़दम!!

प्रेषिका : कुमारी सीखा भट्टो, द्वारा श्री एन. एन. भट्टो, पो. बानो, रांची (बिहार)

पुरस्कार की राशि रु. ५० इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

कॅड्बरिज़ जॅम्स का एक पैक बोर्नविटा के ५00 ग्राम पैक के साथ !

विशेष भेंट ! विशेष लेबल वाले ५०० ग्रा. बोर्नविटा टिन या रीफ़िल पैक मांग कर लीजिए. इसके अंदर मौजूद कॅड्बरिज़ जॅम्स का अपना मुफ़्त पैक पाइए.

बोर्नविटा

इसके गुण कहें, आप बढ़ते रहें

OBM/1083/HN

आओ चलो ना, खेलें।
नहीं। पहले मैं यह जान लूं कि सितारे रात को क्यों नज़र आते हैं।
टिंकल

और तुम यहाँ बैठे हो.... मैं तुम्हे कब से खोज रहा हूँ।
ज़रा, ठहरो यार.... मुझे टिंकल में अपनी कहानी तो पढ़ लेने दो।
टिंकल

क्यों भाई, सभी को कुछ हो गया क्या?
मालूम नहीं... मुझे तो कालिया कौवे का नया कारनामा पढ़ने दो।
टिंकल

Campa
Campa
Campa
Campa
कैम्पा के संग संग
लेते मज़ा हम!
कैम्पा आरेंज फ्लेवर - मौजमस्ती का स्वाद!
OBM/5361